॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षणश्रेणी की पाठ्यपुस्तक : 5

नीलकंठ चरित्र

लेखक

प्रो. रमेश एम. दवे

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद – 380 004.

NEELKANTH CHARITRA (Hindi Edition)
(Teenage life stories of Lord Swaminarayan)

By Ramesh M. Dave

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:

Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:

SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

2nd Edition:

February 2007. Copies: 10,000 (Total Copies: 23,000)

Warning:

Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith

This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material from this book cannot be used without due acknowledgement to Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any reprints the written permission of the publishers is necessary.

ISBN: 81-7526-167-3

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.

प्रेरणामूर्ति : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

सूचना : सर्वाधिकार सुरक्षित : © स्वामिनारायण अक्षरपीठ

इस पुस्तक के अंश किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की लिखित सम्मति अनिवार्य है।

चतुर्थ संस्करण : जनवरी, 2007

प्रति : 10,000 (कुल प्रति : 23,000)

मूल्य : रु. 20.00

मुद्रक एवं प्रकाशक :

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवाओं को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्‌बोधित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुमुक्षुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक

जय श्री स्वामिनारायण।

शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी

(प्रमुखस्वामी महाराज)

निवेदन

भगवान स्वामिनारायण ने अपने संतों, मंदिरों तथा शास्त्रों के द्वारा सनातन वैदिक सिद्धांत को विश्वभर में प्रसारित करने का कीर्ति ध्वज उठाया था। उन्होंने बचपन से ही अपनी विद्वत्ता को प्रस्थापित किया तथा अपने दिव्य ऐश्वर्य तथा सद्‌गुणों के द्वारा लोकहृदय में ईश्वरावतार होने की प्रतीति करवाई।

केवल 11 वर्ष की उम्र में घर संसार का परित्याग करके उन्होंने भारत दर्शन किया। राष्ट्र की सामाजिक आर्थिक राजकीय तथा आध्यात्मिक परीस्थितयों का अवलोकन करके वे कुछ अनूठे निष्कर्ष पर आए। उन्होंने प्रभा के मानस पर उपरोक्त चारों स्थितियों का विपरीत प्रभाव पड़ते देखा, तो उन्होंने धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति से समन्वित एकांतिक धर्म की स्थापना की। लोक कल्याणकारी धर्मयात्रा का उनका उद्देश्य यही था की, अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना के वैदिक सिद्धांत का इस धरातल पर विस्तार करना।

ऐसी दिव्य विभूति एवं महान कार्यों के सूत्रधार भगवान स्वामिनारायण की चरित्र श्रेणी में उनकी तरुणावस्था के चरित्रों को 'नीलकंठ चरित्र' में समाविष्ट किया गया है। सत्संग-शिक्षण परीक्षा के पाठ्यक्रम में इस पुस्तिका को बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था द्वारा आयोजित 'सत्संग-शिक्षण परीक्षा' की द्वितीय कक्षा-सत्संग प्रवेश - के लिए आपके हाथों में रखते हुए हम अत्यंत हर्षित हैं।

भगवान स्वामिनारायण, अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी तथा प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज की कृपा से सत्संगी बालक, युवक तथा जिज्ञासु इस पाठ्यक्रम का समुचित अध्ययन करके सत्संग परीक्षाओं में उच्च सिद्धि हासिल करें - यही अभ्यर्थना!

- संपादक मंडल

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

हम अभी स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए ।
हम अभी श्रीजी के युवक, लड़ेगे श्रीजी के लिए ॥

नहीं डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह ।
हमें है भय नहीं किसीसे, जन्मे हैं मृत्यु के लिए ॥

हमने है यज्ञ आरंभा, सदा बलिदान हम देंगे ।
हमारा अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान के लिए ॥

हम अभी श्रीजी की संतान, अक्षर में वास हमारा है ।
स्वधर्मी भभूत रमाई है, अब हमें शर्म किसके लिए ॥

मिले हैं मोती-से स्वामी, हुए हम पूर्णकाम अभी ।
प्रगट पुरुषोत्तम पाये, संत से मुक्ति के लिए ॥

क्रमिका

1. स्वजनों को मेरा कुशलक्षेम कहना 1
2. त्यागी को आकाशवृत्ति या अजगरवृत्ति ही चाहिए 2
3. वेणीराम को दर्शन दिया और रघुनंदन को जीवन ! 3
4. तपस्वियों की दिव्य गति 7
5. बदरीनाथ धाम की ओर 9
6. प्रलोभन का त्याग 10
7. बदरीनाथ और मानस सरोवर की ओर प्रयाण 13
8. राजा रणजीतसिंह को उपदेश 14
9. स्वयं को ही अभिशाप ! 15
10. नीलकंठ वंशीपुर में 16
11. घोर जंगल में प्रवेश 19
12. भूतों का नाश और योगियों का मोक्ष 20
13. हिमालय के साथ मिलन 22
14. पुलहाश्रम में कठिन तपश्चर्या 23
15. मोहनदास को नीलकंठ के दर्शन 26
16. महादत्त राजा के महल में 27
17. गोपाल योगी से मिलन 29
18. काठमांडू में राजा को आशीर्वाद 31
19. तेलंगी ब्राह्मण का उद्धार 32
20. पिबैक की पराजय 34
21. नौ लाख योगियों का उद्धार 37
22. धर्म का उपदेश 39
23. नीलकंठ जयरामदास के घर पर 42
24. जांबुवान का कल्याण 43
25. नीलकंठ की खोज में 46
26. नीलकंठ से पुनर्मिलन 46
27. नीलकंठ जगन्नाथपुरी में 47

28. मानसपुर में असुरों का नाश 50
29. रता बशिया का कल्याण 51
30. कृतघ्नी सेवकराम 53
31. भगवानदास को चिह्नों के दर्शन 56
32. शिव-पार्वती ने दर्शन किया 61
33. नीलकंठ तोताद्रि में 62
34. कन्याकुमारी से उत्तर की ओर 63
35. नीलकंठ गुजरात में 65
36. बोचासण में नीलकंठ 67
37. चर्मवारि नहीं पीना चाहिए 69
38. मारने का क्या अधिकार? 71
39. स्वरूप की पहचान 73
40. लखु चारण के घर नीलकंठ 76
41. रामानंद स्वामी का जीवन चरित्र 77
42. नरसिंह मेहता को दर्शन 80
43. नीलकंठ लोज में 83
44. वन विचरण का संकेत 87
45. दो स्वरूप में दर्शन 88
46. स्त्री-पुरुषों की सभा अलग-अलग की 90
47. गोखा बंद किया 91
48. खंभा पकड़कर रहना 92
49. चमत्कारों की परंपरा 93
50. रामानंद स्वामी को पत्र लिखा 97
51. नीलकंठ की महिमा 100
52. रामानंद स्वामी के साथ मिलन 101
53. जमादार को समाधि लग गई 103
54. भागवती दीक्षा 105
55. धर्मधुरा धारण 106
56. रामानंद स्वामी का अक्षरवास 110

नीलकंठ चरित्र के बहुआयामी संशोधित संस्करण के संबंध में

'नीलकंठ चरित्र' के इस बारहवें संस्करण को बहुरंगी एवं संशोधित संस्करण के रूप में प्रस्तुत करते हुए करते हुए हम अत्यंत हर्षित हैं। इस संस्करण में कुछ महत्त्वपूर्ण चरित्र शामिल किये गए हैं, कुछ चरित्रों को निकाले गए हैं, और कुछ चरित्रों का संमार्जन किया गया है। श्री हर्षदभाई दवे द्वारा लिखित 'भगवान स्वामिनारायण' ग्रंथ के अनुसंधान में ऐतिहासिक समयानुक्रम के अनुसार संशोधित इस संस्करण में पाठ के क्रम भी संशोधित कर दिये गए हैं तथा कहीं-कहीं हुई क्षतियों को भी दूर किया गया है । इस संस्करण को ही आगामी सत्संग शिक्षण परीक्षाओं के लिए प्रमाणित माना जाएगा।

इस संस्करण से 'नीलकंठ चरित्र' पुस्तक रंगीन चित्रों के साथ उपलब्ध होगी, ताकि बच्चे इसके पठन का अधिक आनन्द उठा सके।

जून 2000

- प्रकाशन समिति
स्वामिनारायण अक्षरपीठ,

1. स्वजनों को मेरा कुशलक्षेम कहना

संवत् 1848 के आषाढ़ शुक्ल दशमी का प्रभात उदित हुआ। अयोध्या के पास सरयू नदी दोनों किनारों पर उफ़नती हुई बह रही थी। महाकाय तांत्रिक कौशिक ने तेज़ गति से बहती हुई नदी में नन्हें से घनश्याम को झोंक दिया। घनश्याम की मृत्यु की कल्पना करता हुआ कौशिक उन्माद में अट्टहास्य करने लगा और पागल की भांति इधर-उधर दौड़ने लगा। अचानक वह एक वृक्ष से टकराया और वह वृक्ष प्रचंड ध्वनि के साथ गिर गया। उसी के नीचे दब कर कौशिक ने कुछ ही पलों में जीवन की आखरी साँस ली।

घनश्याम सरयू की तीव्र गति के साथ बहने लगे। नदी की उन्मत्त लहरों को अपने बाहुबल से पार करके मात्र ग्यारह वर्ष के कोमल बालब्रह्मचारी, लगभग 12 कोस दूर सरयू नदी के उस पार पहुँच गए। अब उन्होंने अपना नाम बदलकर 'नीलकंठ' रखने का निर्णय ले लिया। अपने उद्देश्य की ओर आगे बढ़ने में गृहत्याग ही उनका महत्त्वपूर्ण कदम था। आज वे इसी कारण संतृप्त थे कि, वे लौकिक बंधनों से मुक्त हुए थे। वे बाहर आते ही अपनी दिव्य मस्ती में मस्त होकर सरयू नदी के किनारे-किनारे चलने लगे। वर्षा की बौछारों से भीगते हुए वे अत्यंत तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़े जा रहे थे। पैरों में काँटे-कंकड़ चुभने का उन पर कोई प्रभाव नहीं था। वे देहातीत अवस्था में आषाढ़ के घनघोर मेघ की गर्जना के साथ मल्हार राग में श्रीमद् भागवत के गीत गाते हुए आगे बढ़ रहे थे। मोर की गहेक, कोयल की कूक और चारों ओर फैली हरियाली इतनी शोभायमान थी कि मानो नीलकंठ के स्वागत में प्रकृति पूर्ण सौंदर्य के साथ झूम रही हो!

नीलकंठ का सौंदर्य भी आज और निखर रहा था। उनके हाथ में तुलसी की माला, काले घुँघराले बाल, तेजस्वी मुखाकृति और आँखों में ध्येय तक पहुँचने की दृढ़ता थी। इसके साथ ही उनके चरणों की गति में लोक-कल्याण का भाव झलकता था।

लगभग दो कोस (10 कि.मी.) चलने के बाद नीलकंठ ने रास्ते में एक विशाल वटवृक्ष देखा। वटवृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर वे ध्यानमग्न बैठ गए। जब वे जागे, तब उन्होंने देखा कि हनुमानजी स्वयं उनके सामने

विराजमान हैं! नीलकंठ वर्णी ने पूछा, 'हे पवनसुत, आप कब आये?'

'महाराज! आपका नित्य दर्शन करना मेरा नियम है।' हनुमानजी ने कहा, 'नियमानुसार आज मैं अयोध्या में आपके घर गया, परन्तु आप वहाँ नहीं थे; अत: सरयू तट पर आया। वहाँ भी आपको नहीं पाया। फिर ध्यान में देखा तो आप इस तरफ आये हैं, यह जानकर यहाँ चला आया हूँ। अब यदि आज्ञा हो तो आपके साथ आपकी सेवा में रहूँ।'

नीलकंठ ने कहा, 'अभी तो अकेले ही विचरण करने का विचार है, इसलिए जब मैं आपको याद करूँ, तब आइएगा। अयोध्या में स्वजनों को मेरा कुशलक्षेम कहिएगा।' इतना कहकर वे पुन: ध्यानमग्न हो गए।

2. त्यागी को आकाशवृत्ति या अजगरवृत्ति ही चाहिए

गृहत्याग की5 प्रथम रात्रि को नीलकंठ ने वटवृक्ष के नीचे ही विश्राम किया। आषाढ़ शुक्ल पक्ष एकादशी की मंगल प्रभात-बेला में नियमानुसार वे जागे और प्रात:विधि के पश्चात् वट-वृक्ष के नीचे बिराजमान हो गए। इतने में अमरपुर गाँव के लोग वहाँ आ पहुँचे। नीलकंठ वर्णी को देखकर वे बड़े विस्मित हुए कि क्या आज गाँव में बाल स्वरूप स्वामी कार्तिकेय आये हैं, अथवा साक्षात् ध्रुवजी पधारे हैं! कुछ लोग फल, मिठाई आदि लेने घर की ओर दौड़ पड़े। कुछ ही पलों में नीलकंठ के सम्मुख फल, मिठाई आदि का ढेर लग गया। नीलकंठ ने सभी चीज़ें शालिग्राम को चढ़ाई और थोड़ा-सा स्वयं ग्रहण किया। शेष प्रसाद को उन्होंने गाँव के लोगों में बाँट दिया। अपरिग्रहव्रती नीलकंठ प्रसाद बाँट रहे थे, यह देखकर कुछ लोगों ने कहा, 'ब्रह्मचारी! शाम के लिए अपने पास कुछ रखने की कृपा करें।'

नीलकंठ ने यह सुनकर स्मित किया और कहा: 'यदि ऐसा विचार किया होता कि, संध्या या प्रभात में क्या खायेंगे? तो घर का त्याग क्यों करता? त्यागी को तो आकाशवृत्ति या अजगरवृत्ति ही चाहिए। जिस ईश्वर ने जन्म दिया है, वही पोषण भी करता रहता है।' नीलकंठ की वाणी में दिव्यता और मधुरता थी। सभी उनकी प्रतिभा के दीवाने हो गए।

नीलकंठ ने कहा, 'आप अब जाइए। मुझे यहाँ किसी का डर नहीं है। मेरी शक्ति चराचर में व्याप्त है।' गाँव के भोले-भाले लोगों को नीलकंठ की

दिव्य वाणी समझ में नहीं आई।

नीलकंठ वहाँ से प्रस्थान करके कल-कल बहती नदियों और गहरे नालों को पार करते हुए, जंगल की विकट राह पर आगे बढ़ने लगे। वे जहाँ-जहाँ विश्राम करते, वहाँ के लोग उनकी दिव्यमूर्ति देखकर खींचे चले आते। कभी कोई फल-फूल लाता, तो कभी कोई भोजन। नीलकंठ सबकुछ ठाकुरजी को भोग लगाकर थोड़ा-सा ग्रहण कर लेते और शेष सामग्री वापस लौटा देते।

वे उत्तर में हिमालय के जंगलों की ओर चलते गए। उनके मन में माता-पिता, भाई-भाभी, मित्र आदि किसीका भी स्मरण नहीं था। स्व-स्वरूप का स्मरण करते हुए वे शीघ्रतापूर्वक चलते जा रहे थे। कभी कभी वे पीछे मुड़कर भी देख लेते। मन में भय रहता कि शायद कोई घर से मुझे वापस लेने के लिए न आ जाए! नीलकंठ चलते ही जा रहे थे। गहन अरण्य में मूशलाधार बारिश के बीच, कांटों-कंकड़ों की परवाह किए बिना उनके पाँव आगे ही आगे बढ़ रहे थे। न पैर में जूते थे, न शिर पर छत्र!

स्वयं साक्षात् परमात्मा होने पर भी तथा उन्हें तप करने की कोई आवश्यकता नहीं होने पर भी अनंत लोगों का कल्याण करना ही उनके तप का उद्देश्य था।

3. वेणीराम को दर्शन दिया और रघुनंदन को जीवन !

अयोध्या में घनश्याम के गृहत्याग से सारा वातावरण शोकाकुल था। अपने प्रिय घनश्याम के वियोग से व्याकुल सुवासिनी भाभी के आग्रहवश रामप्रतापजी ने सोचा, 'अब मुझे फिर एकबार छपिया गाँव में घनश्याम की जाँच करना चाहिए। शायद वे रूठ कर छपिया चले गए हों!' गाँव में घनश्याम को सात दिन तक ढूँढ़ा परन्तु वहाँ भी उनका पता नहीं चला। घनश्याम के मित्र भी थककर चूर हो गए थे। अचानक घनश्याम के बाल-मित्र वेणीराम ने सोचा कि घनश्याम, गाँव के गहरे कुँए में कई बार गोता लगाते थे, हो सकता है, उसीमें डूब गए हों! यदि घनश्याम कुएँ में नहीं मिले, तो मैं भी कुएँ में डूबकर मर जाऊँगा।'

यह सोचकर वेणीराम ने कुएँ में छलांग लगा दी। परन्तु वहाँ भी घनश्याम नहीं मिले। काफी समय बीतने पर भी जब वेणीराम बाहर नहीं

निकला, तो उसके पिता मोतीराम को बहुत चिंता होने लगी। मोतीराम अपने पुत्र वेणीराम को निकालने हेतु स्वयं कुएँ में कूद पड़ा। कुएँ में इतना अंधकार था कि मोतीराम भी कुएँ में डूबने लगा। जब पिता-पुत्र दोनों बड़ी देर तक कुएँ से बाहर नहीं निकले तो वेणीराम की माता और उसके मामा

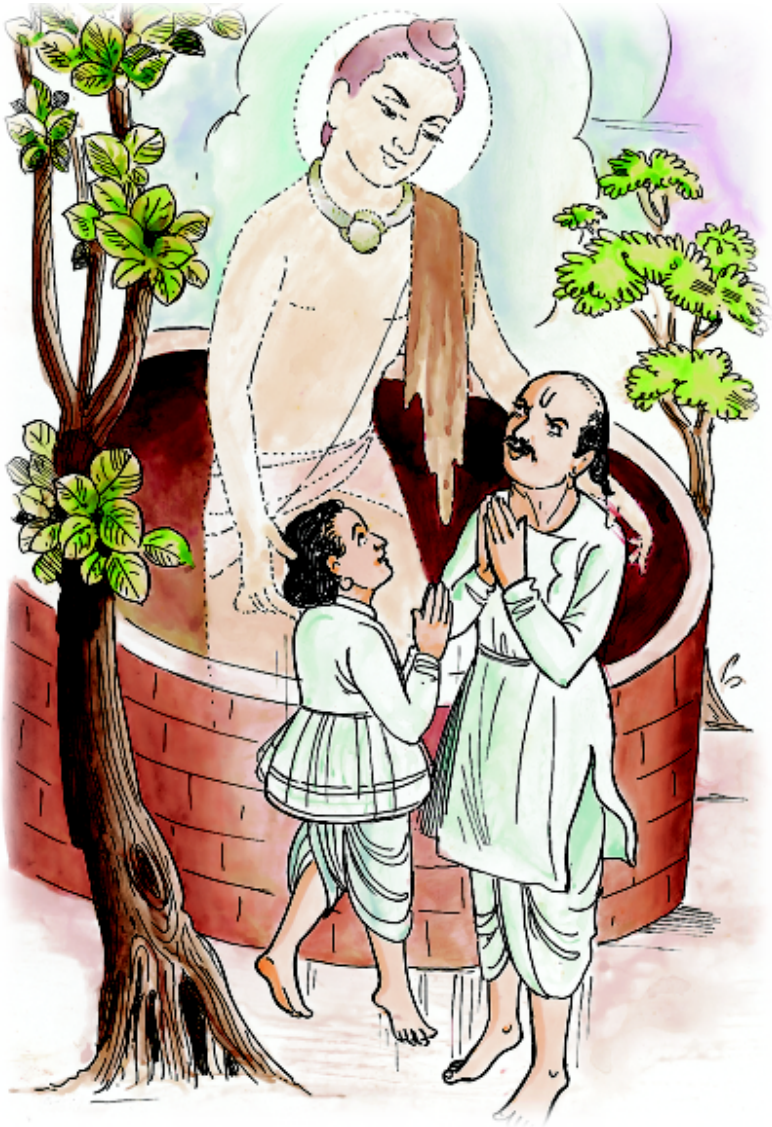

वहाँ आकर सिर पटक-पटककर रोने लगे।

उसी समय घनश्याम ने कुएँ में उन दोनों को दिव्य स्वरूप में दर्शन दिया। कुआँ प्रकाश से भर गया। घनश्याम ने धीरे से वेणीराम और उसके पिता मोतीराम को कुएँ से बाहर निकाल दिया और तुरन्त अदृश्य हो गए। वेणीराम घनश्याम का दर्शन पाकर धन्य-धन्य हो गया।

घनश्याम का एक अन्य मित्र रघुनंदन था। वह वणिक-पुत्र था। उसने घनश्याम को सात दिन तक खोजा। अंत में जब वे न मिले, तब अत्यंत उदास होकर उसने सोचा, 'घनश्याम के बिना जीवन जीने में क्या आनंद?'

यह सोचकर रघुनंदन नारायण सरोवर गया। वहाँ एक पेड़ के नीचे बैठकर घनश्याम का ध्यान किया और ध्यान करते ही विरह-वेदना में उसने अपनी देह का त्याग कर दिया।

जब वह शाम तक घर नहीं आया, तब उसके माता-पिता चिंतित हो गए। वे रामप्रतापजी को लेकर उसे खोजने निकले। वैसे भी रामप्रतापजी घनश्याम के न मिलने पर दुःखी थे, उस पर घनश्याम का मित्र रघुनंदन खो गया, तो वे बहुत दुःखी हुए।

सभी मिलकर नारायण सरोवर की ओर रघुनंदन को खोजने निकल पड़े। तीनों का दुःख देखा तो उसी क्षण हनुमानजी प्रकट हुए उन्होंने आकाशवाणी के रूप में जानकारी दी कि 'आपके छोटे भाई तो वन में तप करने गए हैं। तप करने के बाद वे पृथ्वी पर सद्धर्म की स्थापना करेंगे और भविष्य में आपको उनका दर्शन होगा। अतः आप विलाप मत कीजिए।' यह सुनकर रामप्रतापजी का मन अत्यंत शांत हो गया।

वे आम के वृक्ष के समीप पहुँचे, जहाँ रघुनंदन अचेत होकर पृथ्वी पर पड़ा था। रघुनंदन के माता-पिता शोकातुर हृदय से आक्रंद करने लगे। उनका रुदन सुनकर घनश्याम आकाशमार्ग से पधारे। उन्होंने दिव्य स्वरूप में प्रकट होकर रघुनंदन को पुनः जीवित किया और उसे उठाकर कहा, 'रघुनंदन, मैं कहीं नहीं गया हूँ। तुम जब भी मेरा स्मरण करोगे, मैं शीघ्र उपस्थित रहूँगा। अब इस तरह प्राण-त्याग कभी नहीं करना।' तत्पश्चात् घनश्याम, रघुनंदन, उसके माता-पिता एवं रामप्रतापभाई को दिव्य दर्शन देकर अदृश्य हो गए।

नीलकंठ विचरण करते हुए लोधेश्वर पधारे। यहाँ पर लोधेश्वर महादेव

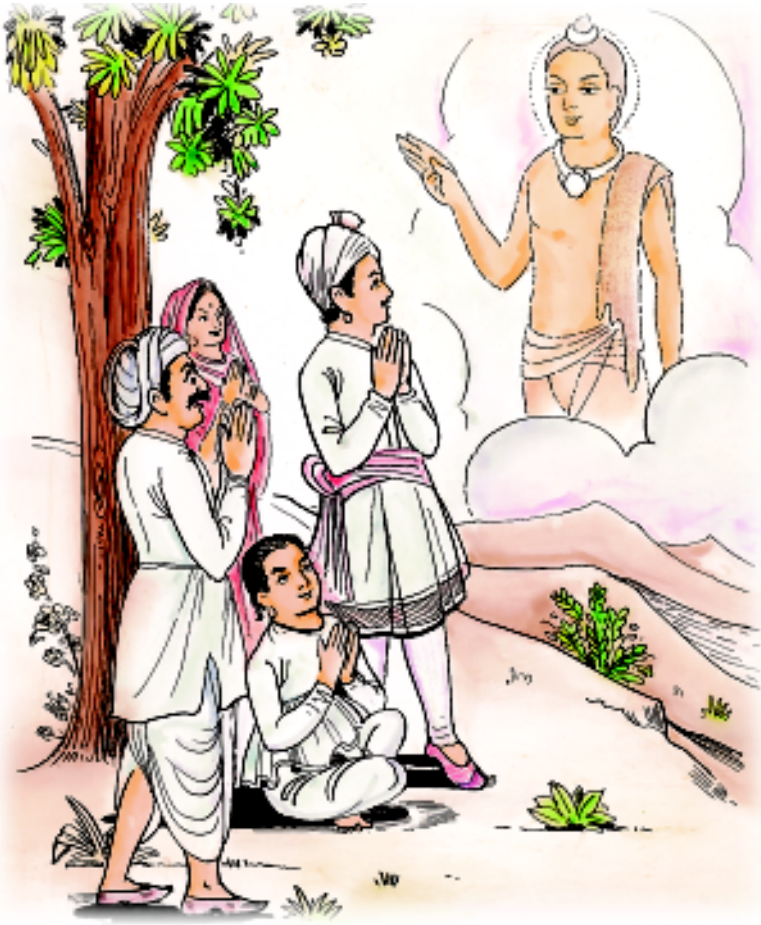

का मंदिर है और लोधेश्वर नामक सरोवर भी है। सरोवर में स्नान करके नीलकंठ ने महादेवजी के दर्शन किए। मंदिर में रात्रि-निवास करके, जेतपुर तथा पथेपुर होकर नैमिषारण्य (खेरीलापुर) आये। नैमिषारण्य में चक्रतीर्थ नामक सरोवर है। सरोवर के चारों ओर अनेक मंदिर विद्यमान हैं। हज़ारों वर्ष पूर्व सूतजी ने शौनकादि ऋषियों को नैमिषारण्य में जो भागवत कथा सुनाई थी, उन सभी तीर्थस्थानों का दर्शन कर नीलकंठ उत्तर की ओर आगे बढ़े।

मार्ग में सहेजापुर तथा बरेली होकर वे महावन में प्रविष्ट हुए। मार्ग अत्यंत विकट था। महावन में इतने घने वृक्ष और झाड़ियाँ थीं कि दिन में भी

घोर अंधकार छाया रहता था। बाघ, सिंह, लोमड़ी, हाथी आदि असंख्य जंगली हिंसक प्राणी इस वन में घूमते रहते थे। साँप, जंगली सूअर, जंगली उल्लू, बिच्छू आदि से जंगल भरा हुआ था। ऐसा निर्जन वातावरण था कि जंगली प्राणियों की दहाड़ से शरीर काँप उठे! परन्तु नीलकंठ इस घोर जंगल में अनासक्त भाव से निर्भय होकर चलते ही रहे।

4. तपस्वियों की दिव्य गति

मार्ग अत्यंत भयानक था। रास्ते में एक से अधिक एक घने जंगल आते रहते थे। नीलकंठ ऐसे घने जंगलों में स्थित एक वटवृक्ष के समीप पहुँचे। वृक्ष के नीचे उन्होंने कुछ तपस्वियों को देखा। उनके पास जाकर उन्होंने पूछा, 'हे तपस्वी संतो! आप सभी यहाँ क्या कर रहे हो? यहाँ से कहाँ जाओगे?'

एक तपस्वी ने कहा: 'वर्णीराज! हम हिमालय में तप करने जा रहे हैं। हमारी इच्छा तप करके भगवान नारायण को प्रसन्न करने की है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए उत्तर में हिमालय में जाकर कठोर तप करेंगे।'

तत्पश्चात् तपस्वियों ने नीलकंठ से पूछा, 'वर्णीराज! आप इस विकट वन में अकेले क्यों आए हैं? हम तो इतने लोग साथ में हैं, फिर भी रात्रि के समय हमें जंगली पशुओं का डर लगता है। आप इतने निर्भीक होकर कैसे घूम रहे हैं? आप कौन हैं? क्या आपको बाघ, शेर आदि जंगली हिंसक पशुओं का डर नहीं लगता? केवल कौपीन धारण किए आप घूम रहे हैं! रात्रि के समय आपको ठंड नहीं लगती क्या?'

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए नीलकंठ ने कहा: 'हम तो आत्मा हैं; देह और घर-परिवार से परे हैं, काम, क्रोध, लोभ आदि दोषों से रहित हैं। सत्, चित्, आनंदरूप अक्षर से भी परे हैं। तीन अवस्था, तीन देह और तीन गुणों से भी परे हैं। हम तो सर्वोपरि दिव्य मूर्ति हैं। हम भी हिमालय की ओर जीवों के कल्याण के लिए जा रहे हैं, परन्तु आप सब तपस्वी प्रकट भगवान के साक्षात्कार बिना मोक्ष की प्राप्ति कैसे करोगे ? तप करके दुर्बल हो जाओगे, फिर भी प्रकट प्रभु को पहचाने बिना मोक्ष नहीं पा सकोगे।'

यह सुनकर सभी तपस्वी दंग रह गए। उन्होंने पूछा, 'हे वर्णीराज! प्रकट प्रभु कहाँ मिलेंगे? कब मिलेंगे? मोक्ष कैसे प्राप्त होता है?'

नीलकंठ ने कहा, 'आपका भाव सच्चा होगा, तो आपको प्रकट प्रभु यहीं पर मिल जाएँगे, उन्हें पहचान लेना। आप सभी का मोक्ष तत्काल हो जाएगा।'

नीलकंठ की वाणी सुनकर सभी तपस्वी अति प्रसन्न हुए। वे नीलकंठ में ही नारायण देखने लगे। उन्होंने नीलकंठ के साथ चलना निश्चय कर लिया। सभी तपस्वी मार्ग में उनकी सेवा के साथ ही उनका उपदेश भी सुनते रहते।

नीलकंठ उनकी सेवा और श्रद्धा से प्रसन्न हुए। उन्होंने तपस्वियों को भगवान चतुर्भुज नारायण के रूप में दर्शन दिया। सभी तपस्वी आनंद विभोर हो गए।

एक दिन, रात के समय तपस्वियों के साथ नीलकंठ एक वट वृक्ष के नीचे पहुँचे। चारों तरफ से बाघ, सिंह आदि जंगली पशुओं की गर्जना सुनाई दे रही थी। झिंगुर की आवाज़, साँप की फुत्कार और उल्लुओं की चीख रात को अधिक भयावह बना रहे थे। सभी तपस्वी डर के मारे वट-वृक्ष के ऊपर शाखाओं में अपनी-अपनी झोली बाँधकर उसी में सो गए थे। नीलकंठ वट वृक्ष से बीस कदम दूर ज़मीन पर ही बिना कुछ बिछाए सो गए थे।

अचानक अर्ध रात्रि के समय एक भयानक जंगली भेड़िया वहाँ आया। जोर से चीखकर ज़मीन को सूंघता हुआ, वह नीलकंठ के आसपास प्रदक्षिणा करने लगा! फिर उसने वृक्ष पर बंधी हुई झोलियों झूल रहे वैरागियों को देखा, तो उनकी तो धिग्घी बंद हो गई। सभी इतने भयभीत हो गए कि जड़वत् होकर झोली में पड़े-पड़े नीलकंठ को भगवान के स्वरूप में याद करने लगे।

सुबह हुई। भेड़िया उठ खड़ा हुआ। एक बार फिर वट-वृक्ष की डालियों पर टंगी झोलियों की ओर देखा, और जोर से दो बार पूँछ पटक कर चला गया। इसके पश्चात् सभी तपस्वियों की वृत्ति नीलकंठ में स्थिर हो गई। नीलकंठ ने उनका कल्याण किया और वे बदरीनाथ की ओर आगे बढ़े।

5. बदरीनाथ धाम की ओर

नौ दिन वन में बिता कर, बहादुरपुर होते हुए नीलकंठ गंगातट पर आए। नाव में बैठकर उन्होंने गंगा पार की । फिर पदयात्रा करते हुए श्रावण माह की शुक्ल एकादशी को हरिद्वार पहुँचे। गंगा में स्नान कर, तट पर उन्होंने महादेवजी के मंदिर में दर्शन किया। श्रावण-मास के मेले में देश के कोने-कोने से सहस्त्रों साधु-संन्यासी आए हुए थे। संन्यासियों को दर्शन-लाभ देकर उनका कल्याण करते हुए नीलकंठ विभिन्न तीर्थस्थानों पर घूमने लगे। यहीं पर ब्राह्मण के रूप में साक्षात् महादेवजी और पार्वती ने उनकी कई दिनों तक सेवा की थी।

वे हरिद्वार से तपोवन में पधारे। उस स्थान की प्राकृतिक शोभा देखकर नीलकंठ बहुत प्रसन्न हुए। यहाँ वे दस दिन रहे। अनंत काल से तप कर रहे तपस्वी, नीलकंठ के दर्शन से कृतार्थ हुए। जहाँ ध्रुवजी ने तप किया था, उस

आश्रम का दर्शन करके उन्होंने यह संकल्प किया कि मैं भी उग्र तप करके तप का आदर्श सिद्ध करूँगा।

तपोवन से वे लक्ष्मणझूला (लक्ष्मणपुरा) पधारे। यहाँ गंगातट पर लक्ष्मणजी का एक मंदिर है। गंगा-स्नान करके, नीलकंठ ने लक्ष्मणजी के मंदिर में दर्शन किया। लक्ष्मणजी की मूर्ति से स्वयं लक्ष्मणजी प्रकट हुए और नीलकंठ के चरणों में झुक गए। नीलकंठ वर्णी ने हाथ पकड़कर उन्हें उठाया और रामचन्द्र भगवान के रूप में दर्शन दिए। यहीं पर गंगाजी भी सुंदर स्त्री का रूप लेकर आईं, और उन्होंने भी नीलकंठ वर्णी के चरणों में ताज़ा फल रखकर सेवा की। नीलकंठ ने उनका भक्तिभाव जानकर कुछ फल ग्रहण किये और शेष फलों का प्रसाद लक्ष्मणजी और गंगाजी को दिया। नीलकंठ प्यासे होंगे, यह जानकर तुरंत ही लक्ष्मणजी दौड़कर मंदिर से नीचे उतरकर अपने उपवस्त्र से छानकर जलपात्र में गंगाजल लेकर नीलकंठ वर्णी के लिए ले आए। नीलकंठ लक्ष्मणजी का स्नेहभाव देखकर यहाँ दस दिन रहे।

6. प्रलोभन का त्याग

लक्ष्मणपुर से प्रस्थान करने के बाद हिमालय की चढ़ाई शुरू हो चुकी थी। चलते-चलते नीलकंठ श्रीपुर शहर पहुँचे।

यहाँ हज़ारों वर्ष पहले, श्रीकृष्ण के वियोग में उद्धवजी ने तप किया था, उस स्थान का उन्होंने दर्शन किया। पवित्र स्थान जानकर यहाँ नारदजी ने श्रीपुर नामक शहर को बसाया था। लोग इसे श्रीक्षेत्र के नाम से भी जानते हैं। यहाँ अलकनंदा नदी धनुष्य आकार में बहती है। इसलिए लोग इस स्थान को धनुषतीर्थ भी कहते हैं।

नीलकंठ वर्णी जब श्रीपुर पहुँचे, तब तक संध्या ढल चुकी थी। उन्होंने गाँव के बाहर एक मठ देखा। वहाँ जाकर मठ के चबूतरे पर ही उन्होंने अपना आसन जमाया। महातेजस्वी बालब्रह्मचारी को चबूतरे पर बिराजमान देखकर मठ के महंतजी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने आकर वर्णी से कहा, 'ब्रह्मचारी! आप मठ के अंदर आकर विराजिए। बाहर जंगली पशुओं का भय रहता है। अतः यहाँ पर बैठना ठीक नहीं है।'

वर्णी ध्यानस्थ मुद्रा में मौन ही रहे। उन्हें शांत देखकर मठाधीश ने पुनः कहा, 'ब्रह्मचारी! आप भूखे होंगे। अंदर आइए, भोजन कीजिए और सुखपूर्वक विश्राम कीजिए।'

परन्तु नीलकंठ वर्णी फिर भी शांत ही थे। महंत ने सोचा कि बालब्रह्मचारी मौनव्रतधारी होंगे, इसलिए महंत ने उन्हें हिलाया और फिर कहा, 'महाराज! सुनिए, यदि मठ में आने की इच्छा न हो, तो गाँव की बस्ती में जाइए। यहाँ तो प्रति पल मृत्यु का भय है।'

नीलकंठ की आँखें खुलीं और उन्होंने महंतजी से कहा, 'पहली बात तो यह है कि मैं गाँव में नहीं ठहरता। गाँव के बाहर, जहाँ एकान्त स्थान पाता हूँ, वहीं रहता हूँ। यदि वह भी न हो, तो आकाश के नीचे रहता हूँ। दूसरी बात यह कि मृत्यु का मुझे कोई भय नहीं है।'

महंतजी ने पुनः समझाते हुए कहा : 'यह आपका योगीहठ है। अकाल ही मृत्यु के मुँह में क्यों जा रहे हैं?' परन्तु ध्यान-मग्न वर्णी पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा।

अंधकार बढ़ता जा रहा था। धीरे-धीरे रात्रि के दो पहर बीत गए, कि अचानक रूह को कँपा देनेवाली शेर की दहाड़ सुनाई दी। महंत और नगर के लोगों की नींदें उड़ चुकी थीं। महंतजी को नीलकंठ की अधिक चिंता होने लगी। अगले ही क्षण भयंकर गर्जना करता हुआ शेर, बड़े-बड़े पंजों को धरती पर जमाता हुआ, वर्णी के पास आ पहुँचा। शेर की दहाड़ सुनकर पेड़ से परिन्दे भी फड़फड़ाकर नीचे गिर गए थे।

वर्णी ने धीरे से अपनी आँखें खोलीं। उन आँखों से करुणा का दिव्य प्रकाश निकल रहा था। दृष्टिपात होते ही शेर निश्चेतन होकर समाधि का दिव्य आनन्द लेता हुआ वर्णी के चरणों में आकर बैठ गया। वह बिलकुल ही जड़वत् हो गया था। महंतजी ने खिड़की खोली और बाहर का दृश्य देखा तो चकित रह गए!

नीलकंठ बड़े स्नेह से शेर के शरीर पर हाथ फेरने लगे। उनके दिव्य स्पर्श से समाधिवत् आनंद में शेर अपना सिर हिलाते हुए उनके चरणों को सूँघने लगा। यह देखकर महंतजी और उनके शिष्य बोल उठे, 'नीलकंठ तो ईश्वरीय अवतार लगते हैं!'

जिसकी गर्जना मात्र सुनकर बड़े-बड़े वीरों की वीरता हवा हो जाती है, वही भयानक शेर आज नीलकंठ वर्णी के चरणों में गाय की तरह बैठा हुआ था। नीलकंठ की यह कोई सिद्धि नहीं बल्कि उनकी दिव्य शक्ति, करुणा और कल्याण भावना का ही चमत्कार था। प्रात:काल उठकर वर्णी जब नदी-तट पर प्रात:विधि के लिए जाने लगे, तो शेर भी वर्णी के पीछे-पीछे चलने लगा। नदी-तट पर आते ही नीलकंठ के संकेत से वह सिर झुकाए झाड़ियों में अदृश्य हो गया।

पीछे आ रहे महंतजी तथा गाँव के लोगों ने दूर से ही सारा दृश्य देखा, तो भावविभोर होकर वे वर्णी के पास आ पहुँचे। महंतजी ने हाथ जोड़कर नीलकंठ से कहा, 'प्रभु, आप तो कोई दिव्य अवतार हैं। यदि आप हमारे मठ में रहें, तो मैं आपको मठाधिपति बना दूँगा। लाखों रुपये इस मठ की आय है।'

वर्णी ने इन्कार करते हुए कहा, 'महाराज, मठ, आश्रम या धन की अपेक्षा होती, तो मैं गृह त्यागकर क्यों निकलता? मुझे तो तीर्थ-स्थानों पर जाकर अनेक जीवों का कल्याण करना है और विश्व को सच्चे सत्संग का मार्गदर्शन देना है।'

इतने बड़े महंतपद का प्रलोभन ठुकराकर वर्णीराज, वहाँ से प्रस्थान करके घने जंगलों में अदृश्य हो गए।

यहाँ से उन्होंने चित्तभंग पर्वत और मनभंग पर्वत का रास्ता तय किया। उन्होंने वहाँ तप कर रहे तपस्वियों को दर्शन दिया। उद्धवजी के आश्रम को तीर्थत्व प्रदान करके, नीलकंठ गुप्तकाशी पधारे। सतयुग में भोलेशंकर को प्रसन्न करने हेतु अनेक ऋषियों ने यहाँ तप किया था। काशीविश्वनाथ महादेव का दर्शन करके नीलकंठ ने गुप्तप्रयाग होकर झूलता पुल पार किया। आगे बढ़ते हुए वे त्रियुगीनारायण मंदिर पहुँचे। वहाँ दर्शन करके वे गौरीकुंड पधारे। यहाँ आकर उन्होंने गर्म पानी के कुंड में स्नान किया। पार्वतीजी के मंदिर को पावन करके पद-यात्रा करते हुए वे केदारनाथ पहुँचे।

भारत में बारह स्वयंभू ज्योतिर्लिंग हैं। इनमें से एक स्वयंभू ज्योतिर्लिंग केदारनाथजी के मंदिर में है। ज्योतिर्लिंग का दर्शन-पूजन करके नीलकंठ कुछ दिनों तक वहीं रुके रहे।

7. बदरीनाथ और मानस सरोवर की ओर प्रयाण

केदारनाथ से चलकर नीलकंठवर्णी बर्फ़ीली आँधियों के बीच हिमालय की चढ़ाई चढ़ने लगे। पहाड़ों के उतार-चढ़ाव वाले विकट मार्गों से नौ दिनों तक चलकर वे बदरीनाथ पहुँचे। शिखरबद्ध सुशोभित मंदिर में जब बदरीनारायण भगवान की मूर्तियों का दर्शन हुआ, तो वे बहुत प्रसन्न हुए।

मंदिर में मूर्ति का दर्शन करते हुए, उन्हें देखकर मंदिर का पुजारी भावविभोर हो उठा। कितने ही बड़े-बड़े ऋषि, महात्मा और यात्रियों को पुजारी ने देखा था, परन्तु उनमें कभी इतना आकर्षण नहीं था। नीलकंठ वर्णी में उसे बदरीनारायण के दर्शन हुए। पुजारी ने बड़ी श्रद्धा से नीलकंठ वर्णी की सेवा की। प्रतिदिन नीलकंठ को वह फूलों की माला पहनाता और भोजन कराता। दीपावली तक नीलकंठ यहाँ रहे। दीपोत्सव के साथ अन्नकूट का उत्सव उन्होंने अत्यंत भक्तिपूर्वक मनाया। बदरीनाथ के द्वार अब बंद होने वाले थे।

सर्दी के दिनों में बदरीनाथ में अत्यंत ही ठंड पड़ती है। शीतऋतु के चार माह यहाँ बर्फ़ की वर्षा होती है। समूचा क्षेत्र हिम से आच्छादित हो जाता है, तब भगवान बदरीनाथजी की चलमूर्ति को नीचे स्थित जोषीमठ के ज्योतीश्वर मंदिर में स्थापित करके पूजा की जाती है। पुजारी, नीलकंठ को सोने के हौदे के साथ हाथी पर बिठाकर जोषीमठ ले आया।

वर्णी को यहाँ से कैलास-मानसरोवर की ओर जाना था। पुजारी एवं जोषीमठ के भक्तजनों ने नीलकंठ को यहीं ठहरने का अत्यंत आग्रह किया। सभी ने कहा कि शीतऋतु में अब ऊपर जाना दुर्गम और भयावह है। वहाँ की हिमवर्षा साक्षात् मृत्यु का तूफ़ान बनकर आती है।

नीलकंठ अपने संकल्प में पहाड़ की भाँति अविचल थे। पुजारी और भक्तों को चिंता थी कि केवल कौपीन पहने हुए नंगे पैरों से यह सुकुमार योगी यात्रा कैसे करेंगे? यह सोचकर सभी भयभीत हो उठे। सभी के भाव का सम्मान करते हुए नीलकंठ आगे की यात्रा के लिए निकल पड़े।

जोषीमठ से एक दुर्गम रास्ता नीती घाटी होकर मानसरोवर तथा कैलास की ओर जाता है। नीलकंठ वर्णी इसी मार्ग पर आगे बढ़े। शीतऋतु

की कंपानेवाली ठंड थी। हवा तीर की भाँति छाती में चुभती थी। बर्फ़ीली आँधियों से बर्फ़ के ओले गिरते थे। नीलकंठ शरीर की परवाह किये बिना तमाम कष्टों को झेलते हुए बदरीवन (आदि बदरी) जा पहुँचे।

यहाँ नरनारायण ऋषि का बदरिकाश्रम है। बिलकुल निर्जन और एकान्त स्थान! नीलकंठ वर्णी नरनारायण के इसी बदरिकाश्रम में पहुँचे । नरनारायण ऋषि ने हर्ष-विभोर हो गद्‌गद स्वर में नीलकंठ की स्तुति करके कहा, 'आपके प्रताप को कोई नहीं जानता। आपके प्रताप से ही हमारा बड़प्पन है। आपसे बड़ा हमें जो समझते हैं, वे वास्तव में आपके प्रताप को जानते ही नहीं हैं।'

नरनारायण ऋषि तथा अन्य मुनिगणों का प्रेम-भाव देखकर नीलकंठ शीतऋतु के तीन माह इस आश्रम में रहे। नीलकंठ वर्णी ने यहाँ कठोर तप किया। हज़ारों ऋषियों को उन्होंने अपनी दिव्य मूर्ति के दर्शन का आनंद दिया।

आश्रम में ऋषियों और भक्तों की सेवाएँ स्वीकार कर नीलकंठ ने बिदाई लेते हुए नरनारायण ऋषि से कहा, 'ऋषिवर्य! आपने मेरी अत्यंत सेवा की है। इसलिए आपकी मूर्ति की स्थापना मैं भरतखंड में अवश्य करूँगा।'

तत्पश्चात् भयंकर हिमवर्षा में हिमालय के शिखरों को पार करते हुए नंगे पैर, केवल कौपीन पहने हुए नीलकंठ वर्णी मानसरोवर पहुँचे।

यहाँ उन्होंने निर्मल जल में स्नान किया और श्वेत हंसों का कल्याण किया। यह स्थान सरयू नदी का उद्‌गम स्थान भी है। सरयू नदी यहीं से निकलती हैं। वर्णी ने दूर से कैलास का दर्शन किया और वापस लौटे।

वापस लौटते हुए अक्षय तृतीया के दिन वे बदरीनाथ पहुँचे।

8. राजा रणजीतसिंह को उपदेश

पंजाब के बहादुर राजा रणजीतसिंह बदरीनाथ के दर्शन करने आये थे। नीलकंठ वर्णी के दर्शन से वे अत्यंत प्रभावित हुए। वर्णी के चरणों में झुककर स्तुति करते हुए कहा, 'बालयोगी! आपके दिव्य व्यक्तित्व का दर्शन पाकर मैं धन्य हुआ। आपके चरणों में अपना सर्वस्व त्यागकर मैं, आपका आश्रय चाहता हूँ। आप, मुझसे दूर न हों।'

नीलकंठ ने उन्हें अपने साथ न रहने का परामर्श देते हुए कहा, 'आप

जहाँ होंगे, वहाँ मैं आपसे पुनः कभी मिलूँगा । अभी तो आप अपने कर्त्तव्य का पालन करें।'

रणजीतसिंह को यह आज्ञा अत्यंत दुःखकारक लगी। फिर भी पुनः मिलने की आशा में उन्होंने धैर्य रखा। नीलकंठ फिर दुर्गम शिखरों को तय करते हुए गंगोत्री पहुँचे। यहाँ गंगाजी का मंदिर है। नीलकंठ ने यहाँ दर्शन करके उत्तराखंड हिमालय की तराई में पद-यात्रा करते हुए हिमालय के प्रवेशद्वार हरिद्वार आ पहुँचे। यहाँ हर की पैड़ी पर राजा रणजीतसिंह को नीलकंठ वर्णी का पुनः दर्शन हुआ। महाराजा रणजीतसिंह नीलकंठ के चरणों में झुक गए और अपना राज-पद सब कुछ, उन्हें सौंप देने की इच्छा प्रकट की। परन्तु नीलकंठ ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, 'मेरी स्मृति करते हुए राज्य करना और यदि मेरा ज्ञान तुम्हारे अंतर में स्थिर होगा, तो राज्य तुम्हें बंधन नहीं करेगा।' रणजीतसिंह के सिर पर हाथ रखकर उन्हें दिव्य स्वरूप का दर्शन दिया। तत्पश्चात् नीलकंठ अयोध्या की ओर आगे बढ़े।

9. स्वयं को ही अभिशाप !

नीलकंठ वर्णी को गृहत्याग किए अभी केवल दस माह ही हुए थे। अज्ञातरूप से अयोध्यावासियों पर कृपादृष्टि बरसाकर वे सरयू तट के मार्ग से आगे बढ़े। वनों-उपवनों को पार करते हुए वे बाँसी शहर पहुँचे।

शहर से कुछ दूर एक नदी बह रही थी। नदी-तट पर सुंदर उद्यान था। नीलकंठ वहाँ प्रतिदिन स्नान करने आते थे।

एक दिन नदी में स्नान करके नीलकंठ वर्णी उद्यान में ध्यान करने के लिए बिराजमान हुए। उसी समय बांसी शहर के दो राज सेवक बंदूक लेकर उद्यान में प्रविष्ट हुए। नीलकंठ वर्णी की उपेक्षा करके दोनों ने बंदूक से निशाना लगाया। सन...न...न... दो गोलियाँ छूटीं। एक पक्षी का युग्म चीखता-तड़पता हुआ वृक्ष से नीचे गिरा। दोनों पक्षियों की विवश आँखें नीलकंठ की ओर देख रही थीं। नीलकंठ की आँखों में पक्षियों ने अपनी आँखें स्थिर कर दीं और अगले ही क्षण पक्षियों के प्राण निकल गए। नीलकंठ ने उन्हें दिव्य गति प्रदान की।

राजा के सेवकों के ऐसे हिंसक आचरण से नीलकंठ अत्यंत दुःखी

हुए। शोक-विह्वल होकर वे उदास हो गए। उस दिन नीलकंठ ने निर्जल उपवास किया। वे बाँसी शहर में वापस नहीं लौटे। नदी-तट स्थित उद्यान में ही पूरा दिन बीता दिया। नीलकंठ का स्वभाव अति दयालु था। उनकी नींद उचट गई थी।

मध्यरात्रि को नीलकंठ अचानक उठ बैठे। नि:श्वास के साथ उनके मुख से शब्द निकल पड़े, 'आग लगे इस शहर को, चल निकलता हूँ यहाँ से!'

उसी क्षण बाँसी शहर आग की ज्वालाओं में जलने लगा। अग्निदेव ने आग का ताण्डव शुरु कर दिया था। राजमहल से ही शहर के जलने की शुरूआत हुई थी। भारी शोर होने लगा। राजा-रानी और प्रजाजन चीखते-चिल्लाते शहर से बाहर की ओर भागने लगे।

नीलकंठ ने यह देखा तो उनके अंतर्मन में करुणा का सागर उमड़ पड़ा। जलते शहर को देखकर नीलकंठ तुरंत नदी में कूद पड़े। उन्होंने सोचा कि 'क्षमावान साधु का यह स्वभाव नहीं होना चाहिए। किसी का बुरा हो, ऐसा विचार तक हमें नहीं करना चाहिए।' वे नदी में कूदे ही थे कि आग शांत हो गई। सभी बच गए, परन्तु केवल वे दो उद्दण्ड सेवक जलकर मर गए।

नीलकंठ इस घटना से प्रभावित होकर नदी के जल में जाकर खड़े हो गए। दाहिने हाथ में जल की अंजलि लेकर उन्होंने संकल्प किया और अपनी वाणी को शाप दिया कि 'आईन्दा कभी भूल से भी ऐसा अनिष्टकारी शाप मेरे मुख से निकले तो वह निष्फल हो जाए अर्थात् ऐसे क्षण पर मेरी वाणी निष्फल हो जाए।'

स्नान-ध्यान करके करुणामूर्ति नीलकंठ वंशीपुर की ओर आगे बढ़े।

10. नीलकंठ वंशीपुर में

प्रात:काल वर्णीप्रभु स्नान करके पीपल के एक वृक्ष के नीचे संध्या करने विराजमान हुए। उस समय वंशीपुर के राजा शिकार खेलने निकले थे। उन्होंने वृक्ष के नीचे बालयोगी को देखा। चंद्रमुखी कमल के पत्र समान गहरी आँखें और ललाट पर ब्रह्मचर्य का तेज!

इस बालयोगी को देखकर राजा हर्षविभोर हो गया। वह उत्तम कोटि का मुमुक्षु था। उसने प्रभु को पहचान लिया, 'नारायण इस स्वरूप में आज मेरा

उद्धार करने आये हैं।' वह तुरंत ही नीलकंठ वर्णी के चरणों में झुक गया।

नीलकंठ ने आँखें खोलीं, तो सामने राजा को देखा। राजा ने प्रणाम करके वर्णीराज को अपने महल में पधारने के लिए प्रार्थना की। राजा का भक्तिभाव देखकर नीलकंठ ने अपनी सहमति दे दी। राजा, उन्हें अपने अश्व पर बिठाकर महल की ओर चल दिया। इसी दृश्य को देखकर सभी आश्चर्यचकित थे! नीलकंठ का दर्शन करने के लिए प्रजाजनों की भीड़ उमड़ पड़ी। सभी ने भावपूर्वक बालयोगी को प्रणाम किया। राजमहल में रानी ने भी हर्षपूर्वक अतिथि का सत्कार किया। नीलकंठ को देखते ही रानी दिग्मूढ़ हो गईं। सभी ने सोचा कि यह कोई सामान्य ब्रह्मचारी नहीं, परन्तु साक्षात् भगवान ही हैं!

रानी को कोई पुत्र नहीं था । उसने सोचा कि साक्षात् परमात्मा ही पुत्र बनकर आये हैं। उसकी दो कन्याएँ ईला-सुशीला भी नीलकंठ के दर्शन से सम्मोहित हो गईं। नीलकंठ की सेवा से राजा और रानी कृतार्थ हो गए। राजा-रानी का भक्तिभाव देखकर नीलकंठ कुछ दिनों के लिए महल में ही ठहरे। पूरा राजमहल बालयोगी की सेवा में लग गया।

प्रात:काल स्नान कर नीलकंठ तैयार होते, तो सुशीला ओर ईला पूजा की सामग्री तैयार कर देती थीं। फल-फूल भी लातीं और नैवेद्य के लिए मिठाईयाँ लाकर नीलकंठ के पास रखती थीं।

नीलकंठ पूजा करके ठाकुरजी को नैवेद्य अर्पण कर उन्हें प्रसाद देते और स्वयं अति अल्प आहार ग्रहण करते थे। भोजन के समय भी सुशीला और ईला उपस्थित रहकर नीलकंठ को प्रेमपूर्वक भोजन कराती थीं। नीलकंठ की भोजन लेने की अलौकिक रीति से सभी मुग्ध हो जाते थे।

वर्णी कभी-कभी अपने चरित्रों की बातें करते, तो कभी वे भूतकाल और भविष्यकाल की बातें करते थे। सभी उनकी बातों में लीन हो जाते। राजा-रानी, नीलकंठ के भोजन के बाद ही भोजन करते थे। वर्णी को राज्य में ही रखने के लिए उनके अंतर में एक प्रकार का लोभ था।

एक दिन रानी, नीलकंठ के पास आई और कहा, 'ब्रह्मचारीजी! यह राज्य आपको सौंपना है। मेरी इन दोनों कन्याओं का विवाह भी आपके साथ करना है, अत: अब आप वन में तप करने के लिए मत जाइए।'

नीलकंठ, रानी की लौकिक तृष्णा को सुनकर मुस्करा दिये और बोले, 'माता! अभी तो मुझे वन में जाना है और आप ही की तरह अन्य भाग्यवान मुमुक्षुओं का कल्याण करना है। यहाँ तो आपके तप के पुण्यों से मैं आया हूँ। आप अति भाग्यवान हैं।'

रानी यह सुनकर उदास हो गई। उसे तो मोह ने फाँस लिया था। वह बोली, 'ब्रह्मचारी! विचार कीजिए। अभी तो बाल्यावस्था है। परन्तु जब युवा-अवस्था आएगी, तब स्त्री के बिना व्याकुल हो जाओगे। अच्छों-अच्छों का अहम् कामदेव ने नष्ट किया है। क्या वह आपको छोड़ देंगे?'

नीलकंठ को रानी पर दया आ गई। उन्होंने कहा, 'मेरे लिए तो वन में जाकर परमात्मा का ध्यान करना यही परम सुख है।'

रानी के पैरों तले पृथ्वी सरकने लगी। क्या वर्णी चले जाएँगे? रानी ने जंगली पशुओं का भय दिखाया, मृत्यु का डर दिखाया, भूख का दुःख बताया, परन्तु वर्णी रानी की बातें सुनकर मुस्कुराते रहे। अन्ततः उन्होंने कहा, 'माता, वन या वन के जंगली प्राणियों का, धूप या ठंड का मुझे कोई भय नहीं है। भय तो वासना का होना चाहिए। मैं तो वासना के मोहजाल से मुमुक्षुओं को मुक्त करने और अपने दिव्य अक्षरधाम का आनंद देने के लिए प्रकट हुआ हूँ । आपके राज्य या आपकी कन्याओं के बन्धनों में फँसने के लिए मैं नहीं आया हूँ। आप सबने श्रद्धापूर्वक मेरी सेवा की है, इसलिए आपको अभयदान देकर मैं अपना अक्षरधाम दूँगा।'

रानी के मन के द्वार खुल गए। अनिमेष नेत्रों से नीलकंठ वर्णी का दर्शन करते-करते रानी समाधिस्थ हो गई। जब समाधि से जाग्रत हुई, तब नीलकंठ वहाँ नहीं थे। रानी की आँखों से आँसू बह रहे थे।

दोनों कन्याएँ माता से बोलीं, 'माँ! नीलकंठ वर्णी निर्विकारी और दिव्य विभूति हैं। हमारे घर कृपा करके उन्होंने निवास किया हैं, तो इनकी इच्छा समझकर सेवा करिए। किसी भी प्रकार का आग्रह मत कीजिए। प्रेमपूर्वक इन्हें मन में ही बसाने का आग्रह रखिए और मिथ्या मोह आप छोड़ दीजिए।'

पुत्रियों के ये वचन रानी को अमृतमय लगे। सुशीला और ईला नीलकंठ के आवास में गईं। वहाँ वे स्वस्तिक आसन लगाकर ध्यान मग्न

बैठे हुए थे। कन्याओं ने छिपकर नीलकंठ के दर्शन किए। पैरों की आहट किए बिना अंदर आकर बिछौना ठीक कर दिया। जल का प्याला और फल रखकर दोनों वहाँ से वापस चली गईं।

नीलकंठ लंबे समय तक ध्यानस्थ अवस्था में बैठे रहे। रात्रि कब हुई, मध्यरात्रि कब बीती, उन्हें पता ही न चला। एकाएक वे जाग्रत हुए और देखा, तो रात्रि की नीरव शांति छा चुकी थी। महल के दरवाजे बंद थे। नीलकंठ ने सोचा कि राजा, रानी और कन्याओं का कल्याण निश्चित ही हो गया है। अब मुझे यहाँ से निकल जाना चाहिए। वे बिजली की तरह तेज़ी से अपने अनजाने पथ पर निकल गए।

सुबह सुशीला और ईला ऊपर आयीं, तब नीलकंठ वर्णी को न पाकर वे अत्यंत दुःखी हुईं। अवश्य ही नीलकंठ वर्णी निकल चुके हैं, यह सोचकर बिलखते हुए दोनों ने रानी को समाचार दिया। नीलकंठ की बिदाई से दुःख के मारे रानी निश्चेतन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी! महल में आक्रन्द छा गया।

राजा पर भी मानों वज्रपात हुआ हो, इस तरह शोकाकुल हो गया। जैसे-जैसे शहर में समाचार फैलता गया, वैसे-वैसे लोग महल की ओर आने लगे।

राजा ने आदेश दिया, 'दस-दस घुड़सवार चारों दिशाओं में भेजो। जाँच करो। नीलकंठ को लिए बिना वापस मत आना।'

चारों तरफ घोड़ों की पादचापों से दिशाएँ गूँज उठीं, परन्तु नीलकंठ का कहीं पता नहीं चला। बीस-बीस कोस तक राजा ने राज्य के जंगलों का चप्पा-चप्पा छान मारा, लेकिन नीलकंठ का पता नहीं चला। विरह की वेदना से वह व्याकुल हो गया। नीलकंठ ने आकाशवाणी द्वारा राजा को धैर्य बंधाया कि मैं तुमसे सौराष्ट्र में मिलूँगा!

11. घोर जंगल में प्रवेश

नीलकंठ अब नेपाल के कालापर्वत की ओर चल पड़े। इस भयावह मार्ग से जाने की हिम्मत कोई नहीं करता था। एक माह तक चलने के बाद वे कालापर्वत की तलहटी में स्थित घने जंगलों में प्रविष्ट हुए।

इन घने जंगलों में सूर्य की किरणें पृथ्वी को छू तक नहीं सकती थीं। नीलकंठ के चरणों के स्पर्श से सूखे पत्तों से आती हुई मर्मर ध्वनि से साँप

इधर-उधर सरककर भागते थे। गेंडा, जंगली भैंसा आदि हिंसक जानवर इधर-उधर दौड़ते हुए चिंग्घाड़ते रहते थे। चारों ओर से हिंसक प्राणियों की चीख-चित्कार सुनाई देती थीं। बिच्छू, साँप, केंकड़ा आदि अनेक जीव-जंतु के रहते भी नीलकंठ नंगे पैर बिना किसी भय, एक ही दिशा की ओर चले जा रहे थे।

उन्हें पुलहाश्रम पहुँचना था। तीन दिन और तीन रातें बीत गईं, परन्तु विश्राम के लिए कोई स्थान नहीं मिला। चार दिन बिना कुछ भी खाए-पीए ही बीत गए। अब शरीर में शक्ति बिल्कुल न रही। चलते-चलते एक स्थान पर नीलकंठ मूर्छित हो गए। जाग्रत हुए तब कुछ दूर पर एक नदी दिखाई दी। शरीर से लड़खड़ाते हुए वे नदी के तट तक पहुँचे। स्नान करके उन्होंने शालिग्राम को स्नान कराया और जंगली फलों का नैवेद्य चढ़ाकर स्वयं भी थोड़ा सा प्रसाद लिया। शाम के समय आसन लगाकर उन्होंने संध्या वंदन किया।

आज नीलकंठ को घर से निकले हुए एक वर्ष और तैंतालीस दिन पूरे हुए थे। संवत् 1850 की श्रावण कृष्णपक्ष अष्टमी का आज पवित्र दिन था।

12. भूतों का नाश और योगियों का मोक्ष

नीलकंठ एक विशाल वट-वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो कर बैठे थे। पवनपुत्र हनुमानजी एक वृक्ष पर चढ़कर नीलकंठ का दर्शन कर रहे थे। अर्ध रात्रि हुई। प्रकृति ने अपना रौद्र स्वरूप धारण किया। अति भयंकर आवाज़ें चारों तरफ से आने लगीं और दूर-दूर से आग की लपटें दिखाई देने लगीं। थोड़ी देर के बाद भयानक आकृतियाँ धीरे-धीरे समीप आने लगीं।

पवनपुत्र हनुमानजी सचेत थे। उन्होंने देखा कि कुछ भूत-प्रेत चारों ओर से वटवृक्ष की ओर बढ़ रहे थे। कुछ ठिंगने, तो कुछ ताड़ के पेड़ की तरह लंबे, तो कोई मोटे, लंबे-लंबे दाँत वाले, तो कुछ सिर पर सींगवाले, बड़ी-बड़ी लाल-सुर्ख आँखें और लंबे-लंबे नाखूनवाले भूत आ रहे थे। चीखते हुए, हू...हू...हू..., की आवाज़ें करते हुए वट-वृक्ष के निकट आते हुए सभी भूतों का राजा कालभैरव सबसे आगे था। उसके हाथ में नुक़ीला भाला था।

कालभैरव ने कहा, 'टूट पड़ो उस लड़के और उस बंदर पर। दोनों हमारे शिकार हैं।'

यह सुनकर हनुमानजी हुंकार के साथ भूतों पर टूट पड़े। उन्होंने पर्वत जितना विशाल स्वरूप धारण कर लिया। चारों तरफ पूँछ से वार करके भूतों को मारने लगे। कुछ भूतों को पूँछ से बाँधकर पछाड़ दिया। वन में चारों ओर चीख-पुकार और भाग-दौड़ मच गई। कुछ भूत भय के मारे भागने लगे। कुछ पछाड़ खाते, टकराते दूर जाकर छिप गए। इस चीख-पुकार और भाग-दौड़ से जंगल के पशु-पक्षी भी चौकन्ने हो गए।

ऐसी पराजय पाकर भूतों का राजा कालभैरव क्रोधित हो गया। वह हनुमानजी की तरफ दौड़ा। पवनपुत्र हनुमानजी ने उसे एक ही छलांग में दबोच लिया। उसे अपनी पूँछ से लपेटकर पकड़ा। फिर दोनों हाथों की दोनों मुट्ठियाँ जोर से कालभैरव के सिर पर दे मारीं। कालभैरव का सिर धड़ से अलग हो गया। रक्त की धारा बह निकली। अन्य भूत मार के डर से भाग निकले। पूर्व-आकाश में सूर्य की लालिमा छाने लगी। सर्वत्र शांति फैल गई।

नीलकंठ ने स्नान करके पूजा की। हनुमानजी मीठे फल ले आये। फलाहार के बाद नीलकंठ ने हनुमानजी को प्रसाद दिया तथा प्रसन्न होकर आशीर्वाद भी दिए।

वहाँ से प्रस्थान करके नीलकंठ ने पर्वतों पर चढ़ाई शुरू कर दी।

जैसे-जैसे वे पर्वत पर चढ़ते गए, वैसे-वैसे घनघोर जंगल दिखने लगा। पर्वत के ऊपर पहुँचे, तो अत्यंत घना जंगल था, वहाँ दिन में भी अँधेरा रहता था, जंगल के बीचोबीच कुछ योगी तप कर रहे थे। उन्होंने नीलकंठ को देखा, तो वे अति प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा, 'आज साक्षात् भगवान दर्शन देने पधारे हैं। हमारी अनेक वर्षों की तपश्चर्या सफल हुई।'

उन्होंने नीलकंठ को सम्मानपूर्वक बुलाया। पर्णकुटी में रहने के लिए जगह साफ़ कर दी। सरोवर में साथ ले जाकर स्नान करवाया।

नीलकंठ ने पूजा करके पूछा, 'यहाँ तो सर्वत्र जंगली वनस्पतियाँ हैं। खाने के लिए कुछ फलफूल मिलेंगे क्या?'

सुनकर योगियों ने कहा, 'हमारे पास अक्षयपात्र है। प्रतिदिन दोपहर को जो चाहिए, वह खाने को मिल जाता है।'

चार दिन तक योगियों ने नीलकंठ वर्णी की बहुत सेवा की। प्रतिदिन नई-नई चीज़ों की इच्छा करके अक्षयपात्र से निकालते और नीलकंठ को खिलाते। पाँचवें दिन जब नीलकंठ आगे जाने के लिए तैयार हुए, तब सभी योगियों ने उनके चरण पकड़ लिए और कहने लगे, 'अपने आश्रय में लेकर आप हमारा उद्धार कीजिए।' नीलकंठ ने प्रसन्न होकर कहा, 'अभी और थोड़े समय आप सब ध्यान कीजिए। मैं सभी का कल्याण करने ही निकला हूँ। मैं जब घूमते हुए नवलखा पर्वत पर पहुँचूँगा और वहाँ नौ लाख योगियों का कल्याण करूँगा, तब आपका भी कल्याण होगा।'

यह सुनकर सभी योगी अत्यंत प्रसन्न हुए और नीलकंठ को भावपूर्वक बिदा दी।

13. हिमालय के साथ मिलन

नेपाल में नीलकंठ हिमालय के घने जंगलों से मार्ग निकाल के चले जा रहे थे। दो विशाल पर्वत धवलगिरि और श्यामगिरि के बीच की खाई (घाटी) अत्यंत गहरी थी। आगे बढ़ने पर उन्होंने घाटी में दो पर्वतों के बीच से पानी का उमड़ता हुआ तेज़ प्रवाह देखा। आगे जाने के लिए उस प्रवाह को लाँघना अनिवार्य था। इसके बिना कोई रास्ता नहीं था। नीलकंठ को किसी प्रकार पुलहाश्रम पहुँचना ही था।

इतने में पर्वतराज हिमालय मूर्तिमान स्वरूप धारण करके नीलकंठ के पास आए। नीलकंठ को दंडवत् प्रणाम करके पूछा, 'हे कृपानाथ, आप कहाँ से आए हैं? अपना संकल्प मुझ से कहिए। मैं आपकी सेवा और दर्शन करने आया हूँ।'

यह सुनकर नीलकंठ बोले, 'मुझे पुलहाश्रम तप करने के लिए जाना है। मैं मार्ग भूल गया हूँ। अत: आप मुझे पुलहाश्रम का मार्ग दर्शन करें।'

हिमगिरि ने कहा, 'महाराज! इन दोनों पर्वतों के मध्य बह रहे जल प्रवाह में होकर ही आप आगे बढ़ सकेंगे। परन्तु यह मार्ग अति विकट है। इसमें ज़हरीले साँप, घड़ियाल, कछुए और मछलियाँ हैं। बड़े-बड़े घड़ियाल तो हमेशा शिकार की प्रतीक्षा में तैयार ही रहते हैं। इसलिए आप कृपा कर इस राह से न जाएँ।'

परन्तु नीलकंठ ने बिना कुछ कहे पानी के उस भयंकर प्रवाह में छलांग लगा दी। हिमगिरि स्तब्ध होकर सोचते ही रह गए। सारी रात्रि विपरीत प्रवाह में वे बहते रहे। प्रात:काल नीलकंठ गुफा में से बाहर निकले। काली गंडकी के किनारे-किनारे वे आगे बढ़ने लगे।

चलते-चलते अनेक विघ्नों को पार करते हुए वे 12,500 फीट ऊँचाई पर तीर्थधाम मुक्तनाथ में पहुँच गए।

14. पुलहाश्रम में कठिन तपश्चर्या

मात्र 12 वर्ष की आयु में पुलहाश्रम पहुँचकर नीलकंठ ने तप करने का अपना दूसरा लक्ष्य पूर्ण किया। जब वे मुक्तनाथ पहुँचे, तब श्रावण माह के अंतिम दिन थे। नीलकंठ ने मुक्तनाथ के दर्शन किये और पुलहाश्रम के वातावरण को बहुत पसंद किया। यह स्थान एकान्त और अति रमणीय था। यहाँ ब्रह्मा के पुत्र पुलह ने तप किया था। यहाँ भरतकुंड के पास युगों पूर्व भरतजी ने तपश्चर्या की थी। नीलकंठ ने भी भरतकुंड पर तपश्चर्या करने का निर्णय लिया।

चातुर्मास की भयंकर आँधी और वर्षा में नीलकंठ ने कठिन तपश्चर्या प्रारंभ की। हड्डियाँ गला दे, ऐसी ठंड में नीलकंठ हाथ ऊपर करके एक पैर पर खड़े हो तपश्चर्या में लीन हो गए। लम्बी जटाएँ, पतला शरीर, गौर वर्ण

और नासिका के अग्रभाग पर आँखों की स्थिरता। उन्हें भूख-प्यास की परवाह नहीं थी। निरंतर उपवास करते-करते, खुले शरीर ठंड, वर्षा की बौछारों को झेलते हुए उन्होंने तप किया।

नीलकंठ का शरीर गलने लगा था। उनके शरीर की एक-एक हड्डी और नाड़ियाँ दिखाई देने लगीं थीं । कोमल शरीर बिलकुल कृश हो गया। इसी पुलहाश्रम में अन्य कुछ योगी, मुनि भी रहते थे। वे सब इतनी कम आयु के बालक का तप देखकर दंग रह गए।

वे प्रात:काल और सायंकाल नीलकंठ का दर्शन करते, परन्तु नीलकंठ तो तप में निमग्न रहते थे। नीलकंठ की तपश्चर्या को देखकर उन्होंने सोचा, 'ऐसा उग्र तप इतनी सी उम्र में ऐसे स्थान पर कभी किसी ने भी किया हो, ऐसा पुराण या इतिहास में नहीं मिलता। निश्चित ही साक्षात् नारायण ही इतना कठिन तप करने पधारे हैं!'

वे सभी प्रतिदिन नीलकंठ के चरण छूते और प्रार्थना करते, 'हे देव ! हमें वैराग्य और तप के गुण दीजिए।'

अंतरिक्ष से धर्मदेव और भक्तिमाता अपने दिव्य देह से उपस्थित रहकर नीलकंठ की रक्षा करते थे। दूसरी तरफ अंतरिक्ष में ब्रह्मा, विष्णु और महेश उनका दर्शन करते हुए सेवा करते थे।

नीलकंठ ने चातुर्मास का समय इस कठोर तप में बिताया। सं. 1850 की कार्तिक शुक्ला एकादशी की प्रभात-बेला में सूर्यनारायण साक्षात् मूर्तिमान मनुष्य जैसा रूप धारण करके प्रकट हुए और वरदान मांगने को कहा।

नीलकंठ वर्णी ने आनंदित होकर कहा, 'मेरा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य अखंडित रहे और जब-जब मैं आपका स्मरण करूँ, तब-तब आपके साक्षात् दर्शन हों, ऐसा वरदान दीजिए।'

सूर्यनारायण ने हाथ जोड़कर कहा, 'हे प्रभु! आप तो निर्दोष हैं। आपके द्वारा ही हमारा बड़प्पन है। आपकी कृपा और उपासना से ही मुझे प्रकाश प्राप्त हुआ है। आप सभी अवतारों के अवतारी, साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण हैं। आप सदा निर्दोष हैं। आपको वरदान देनेवाला मैं कौन हूँ? परन्तु ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मस्थिति प्राप्त होती है, यह सिद्ध करने हेतु आप यह तपश्चर्या कर रहे हैं। आप में सभी कल्याणकारी गुण सिद्ध हैं। फिर भी आप

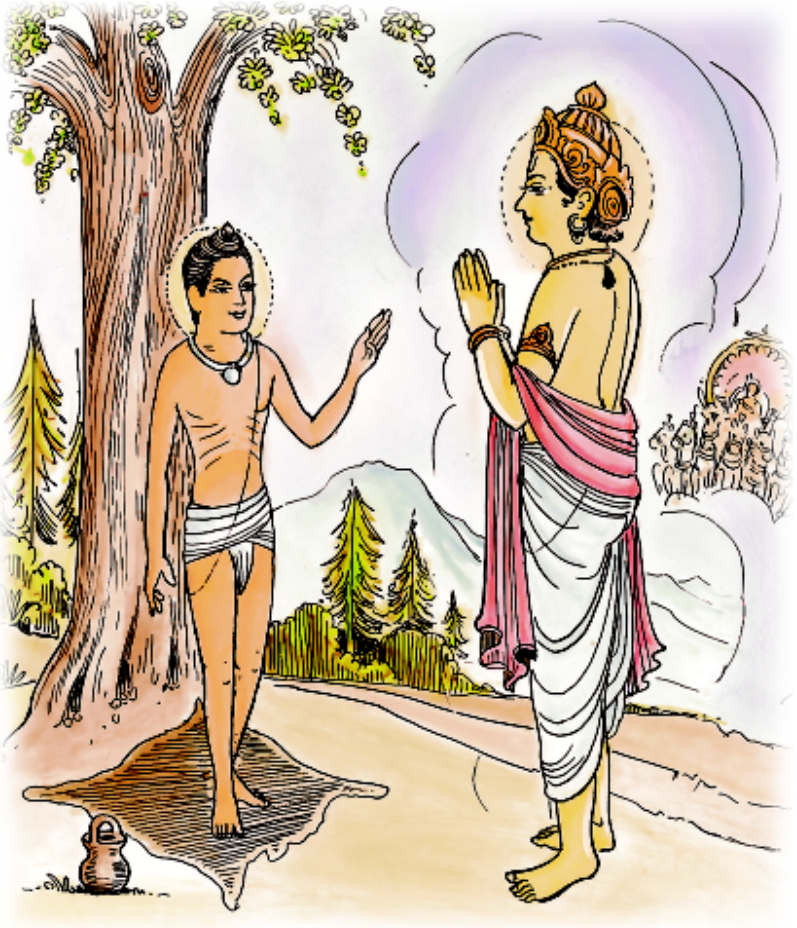

ने जो माँगा है वह यथार्थ होगा। पृथ्वी के लोग त्याग, वैराग्य और आपकी तरह तप करना सीखें, इसलिए आपने इतना उग्र तप किया।'

सूर्यनारायण ने प्रणाम करके कहा, 'हे स्वामी ! आपने मेरा स्मरण किया, इससे मैं धन्य हुआ हूँ। जब कभी मेरी सेवा की आवश्यकता हो, मुझे स्मरण करना। मैं आपकी सेवा में हंमेशा उपस्थित रहूँगा ।' इतना कहकर वंदन करके सूर्यनारायण अदृश्य हो गए।

मुक्तनाथ का दर्शन करके नीलकंठ ने वहाँ से बिदा ली। अपना संकल्प पूर्ण हुआ, इसलिए वे आनंदित थे। तपश्चर्या करने का हेतु भी यही

था कि कलियुग में भी इस लोक में तपश्चर्या का एक उच्च आदर्श बने। विविध भोगों से दूर कल्याण-पथ पर मुमुक्षुओं को चलने की प्रेरणा मिले।

अत्यंत कृश शरीर होते हुए भी नीलकंठ तेजस्वी दिख रहे थे। उन्होंने अब पर्वतीय ढालों और घने जंगलों के बीच होकर पोखरा का मार्ग पकड़ लिया।

15. मोहनदास को नीलकंठ के दर्शन

घनघोर जंगल में तेज़ गति से जा रहे नीलकंठ वर्णी को देखकर मोहनदास नामक एक साधु अत्यंत प्रभावित हुआ। उसे अद्‌भुत शांति की अनुभूति हो रही थी। उसने सोचा कि यह निश्चित ही कोई महाविभूति हैं। नीलकंठ के चरणों में प्रणाम करके उसने पूछा, 'ब्रह्मचारी! हिमालय की तलहटी में जाते हुए मैं रास्ता भूल गया हूँ, परन्तु आप इतने भयंकर निर्जन वन में इस किशोरावस्था में क्यों निकल पड़े हैं?'

नीलकंठ ने कहा, 'मैं तुम्हारे जैसे मार्ग भूले हुए मुमुक्षुओं को मार्ग दिखाने घूम रहा हूँ।'

मोहनदास यह सुनकर चकित हो गए। बालयोगी के गूढ़ शब्दों में विशिष्ट प्रकार का आकर्षण था। उसने नीलकंठ के साथ रहने का निश्चय कर लिया। नीलकंठ ने भी उसे अपने साथ आने की सहमति दे दी। नीलकंठ ने देखा कि मोहनदास वास्तव में मुमुक्षु है, फिर भी जगत के पदार्थों में उसका मन भटकता रहता है। जोषीमठ में पुजारी ने नीलकंठ को पानी भरने के लिए एक सुंदर कठारी भेंट दी थी। मोहनदास का मन इस कठारी ने मोह लिया। अत: नीलकंठ के दर्शन करते हुए उसकी वृत्ति कठारी में रहा करती थी।

मार्ग में पत्थरों पर कदम रखकर एक छोटा-सा झरना पार करना था। परन्तु पत्थर काई से सने हुए थे। पाँव फिसलने का भय था, अत: मोहनदास ने शीघ्रतापूर्वक चलते हुए नीलकंठ को पीछे से आवाज़ दी: 'अरे ब्रह्मचारी! सँभालिए, पत्थर पर पैर रखेंगे तो फ़िसल जाएँगे और कठारी टूट जाएगी ।'

नीलकंठ को मोहनदास की क्षुद्रता पर हँसी आ गई। झरना पार करके नीलकंठ जब सामने पहुँचे तो कठारी पत्थर से टकरा कर तोड़ दी!

मोहनदास आश्चर्य से चिल्लाया, 'अरे, अरे! नीलकंठ! यह आपने क्या

किया? इतनी सुंदर कठारी तोड़ दी?'

नीलकंठ ने कहा, 'भगवान के स्वरूप मे वृत्ति रखने के बजाय लौकिक पदार्थों में मोह रखोगे, तो इन आसक्तियों से मुक्ति कैसे पाओगे?' मोहनदास को अपने मोह का ज्ञान हुआ। वह नीलकंठ के चरणों में झुक गया।

कुछ दिनों के पश्चात् एक ऊँचे वृक्ष पर से आम के फल जैसे जामुनी रंग के फल नीचे गिरे हुए थे। नीलकंठ इन फलों का आहार करने लगे। मोहनदास को भी फलाहार करने की इच्छा हुई। परन्तु नीलकंठ ने कहा, 'ये विषैले फल हैं। तुम खाओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।'

मोहनदास ने फल फेंक दिया। थोड़ी देर पश्चात् चार आडम्बरी बाबा वहाँ आये। नीलकंठ को फल खाते देख वे भी फल तोड़कर खाने के लिए तैयार हुए। इतने में नीलकंठ ने मोहनदास से कहा, 'उनसे जाकर कहो कि ये फल न खाएँ।'

मोहनदास ने उन साधुओं से कहा कि ये विषैले फल हैं, खाना मत, मृत्यु हो जाएगी। परन्तु उन बाबा किसी की सुननेवाले नहीं थे।

एक बाबा बोले, 'वह ब्रह्मचारी क्यों खा रहा है?'

मोहनदास ने कहा, 'वह तो महापुरुष हैं।'

आडम्बरी बाबा ने कहा, 'हम भी महापुरुष हैं।' ऐसा कहकर उन्होंने फल खाये ओर वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गए। आगे चलकर किसी तीर्थस्थान में मोहनदास को रहने के लिए आज्ञा देकर नीलकंठ आगे बढ़े।[1]

16. महादत्त राजा के महल में

नीलकंठ पोखरा की ओर चल दिए। तिब्बत की भूमि पर उन्होंने दूर से दृष्टि डाली। चलते-चलते नीलकंठ वर्णी बुटोलनगर में आ पहुँचे। नदी के तट पर स्थित सुंदर उद्यान में नीलकंठ ने मालिक की अनुमति लेकर निवास करने का निश्चय किया।

---

1. कुछ साल बाद मोहनदास द्वारिका की यात्रा करने जा रहे थे। रास्ते में उन्हें सौराष्ट्र में भगवान स्वामिनारायण के दर्शन हुए और उनके पास दीक्षा ली। भगवान स्वामिनारायण ने उनका नाम 'व्रजानंद स्वामी' रखा। वे एकमात्र संत थे जो श्रीहरि के वन-विचरण के प्रत्यक्ष साक्ष्य थे।

उद्यान में साधुओं की जमात भी इकट्ठी हुई थी। प्रतिदिन नियमानुसार नगर के राजा महादत्त और उसकी बहन मायारानी प्रात:काल उद्यान में आये। वैरागी साधुओं को नमस्कार एवं उनके चरणस्पर्श करते-करते वे नीलकंठ वर्णी के पास पहुँचे।

वर्णी की निर्मल कांति, तप से कृश देह, किशोरावस्था में भी अप्रतिम प्रतिभा देख राजा और उसकी बहन को दिव्यता का अनुभव हुआ। नीलकंठ का कृश शरीर देखकर उनकी आँखें गिली हो गईं। दोनों ने नीलकंठ के चरणों में झुककर अपना परिचय दिया तथा उद्यान के बंगले में निवास करने का प्रस्ताव रखा।

महादत्त के भावपूर्ण आग्रह के कारण नीलकंठ ने बंगले में रहना स्वीकार कर लिया। यहाँ अलग कमरे में नीलकंठ के निवास का प्रबंध किया गया। वैरागी बाबाओं के मन में ईर्ष्या की आग धधकने लगी। राजा प्रतिदिन आकर नीलकंठ के साथ ज्ञानगोष्ठी करता था। राजा ने आज तक ऐसा शुद्ध ज्ञान कभी सुना नहीं था।

उद्यान में राजा की पुत्री अपनी सखियों के साथ खेलने आती थी । उन्हें देख साधुबाबा आनंदित हो जाते थे, परन्तु नीलकंठ सदा संयम-दृष्टि रखते थे या ध्यानमग्न रहते थे। नीलकंठ के दर्शन से राजकन्या और उसकी सखियाँ भी प्रसन्न होतीं। जब कि साधु-बाबाओं की विकारी दृष्टि उन्हें पसन्द नहीं थी। महादत्त ने राजकन्याओं से यह जाना, तो उन्हें नीलकंठ की विशेष महत्ता समझ में आई।

महादत्त राजा और उसकी बहन ने नीलकंठ को अपने महल में निवास करने का अति आग्रह किया, परन्तु नीलकंठ ने अस्वीकार करके केवल भोजन करने महल में आने के लिए अपनी सहमति दी। वर्णी की भावपूर्वक की गई सेवा के कारण मायारानी और महादत्त का अंतर्मन शुद्ध हो गया। नीलकंठ ने अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन दिया। राजा और उसकी बहन धन्य हो गए।

अब नीलकंठ बिदाई की तैयारी करने लगे। कमर पर मृगचर्म लपेट लिया, गले में शालिग्राम तथा हाथ में कमंडल ले लिया। राजा तथा रानी नीलकंठ की बिदाई से गद्गदभाव से कहने लगे, 'महाराज ! इतने दिनों तक साथ रहे। अपने स्वरूप का ज्ञान कराया और अब एकाएक आपने कहाँ जाने

की तैयारी की? राजकुमार और राजकुमारी ने भी व्रत लिया है। हम सब आपके बिना कैसे जी सकेंगे ?'

नीलकंठ ने कहा, 'राजन् ! अब मुझे जाना चाहिए। अनेक मुमुक्षु मेरी राह देख रहे हैं।'

फिर भी उनके अति आग्रह के कारण नीलकंठ ने सभी सामग्री पुनः वापस रख दी। उन्होंने कुछ समय बाद वहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय किया। एकदिन रात्रि के घने अन्धकार में राजमहल के लोगों को सोते हुए छोड़कर नीलकंठ वहाँ से निकल पड़े। प्रातःकाल मायारानी को मालूम पड़ते ही चारों तरफ घुड़सवार भेज दिए गए। नीलकंठ दस कोस की दूरी तक निकल गए थे, परन्तु उनको प्रार्थना करके वापस बुला लाये।

नीलकंठ के सत्संग से अंत में राजा और मायारानी मोहमुक्त हुए। पाँच माह तक रहने के बाद नीलकंठ वहाँ से आगे के लिए प्रस्थान कर गए।

17. गोपाल योगी से मिलन

लगभग एक वर्ष तक हिमालय के जंगलों में नीलकंठ वर्णी अकेले ही विचरण करते रहे। बर्फ़ीली आँधियाँ, धूप, वर्षा, भूख-प्यास और भयंकर हिंसक प्राणी भी उनके संकल्प को डिगा न सके। उन्हीं घने जंगलों के मध्य एक दिन नीलकंठ ने एक विशाल वट-वृक्ष की छाया में एक वृद्ध, परन्तु असाधारण तेजस्वी योगी को देखा। वे स्वस्तिक आसन में ध्यान-मग्न बैठे हुए थे। नीलकंठ के समीप आते ही ध्यानमग्न योगी की आँखें अपने आप ही खुल गईं। नीलकंठ के दर्शन से योगी के मन में भक्तिभाव उमड़ पड़ा। वे उठकर दौड़ पड़े और महाप्रभु को उन्होंने गले लगा लिया। साक्षात् भगवान मिलने के आनंद में योगी की आँखों से आँसू की धारा चलने लगी।

बहुत देर तक गले मिलने के पश्चात् जब दोनों अलग हुए, तब दोनों की आँखों में आँसू थे। योगी बोले, 'भगवन्! बहुत प्रतीक्षा करवाई!'

योगी को पूर्ण विश्वास हो गया था कि साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण दर्शन देने आये हैं। फिर भी वृद्ध योगी ने औपचारिक रूप से अनजान बनकर कहा, 'मेरा नाम गोपालयोगी है। आज तक मेरा मन कहीं भी आकृष्ट नहीं हुआ था। कभी भी मेरी आँखें ध्यान से खुली नहीं हैं, परन्तु

आज आप वृक्ष के नीचे पधारे और मेरी आँखें स्वत: खुल गईं। मेरा मन और मेरी आँखें आपकी ओर आकृष्ट हो गए। अत: हे बालयोगी, आप कौन हैं ? मैं अष्टांगयोगी तथा सिद्ध ऋषि हूँ। आप मुझे अपनी पहचान दीजिए।'

नीलकंठ योगी के स्नेहभाव को देखकर कहने लगे, 'मैं आत्मा, अक्षरब्रह्म इन सब से परे स्वयं परब्रह्म हूँ। परन्तु लौकिक दृष्टि से मैं ब्राह्मणपुत्र हूँ। तीन वर्ष पूर्व गृहत्याग किया, तब से वन में घूम रहा हूँ। उग्र तप करके मैंने सूर्यनारायण को प्रसन्न किया है। अष्टांगयोग सिद्ध करने की अभिलाषा है। लोग मुझे 'नीलकंठ' कहकर पुकारते हैं। आप मुझे अपना शिष्य बनाकर योगविद्या की शिक्षा दीजिए।'

यह सुनकर गोपाल योगी अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने नीलकंठ को योगाभ्यास कराने की सहमति दे दी। वे प्रतिदिन प्रात: और सायंकाल में नीलकंठ को योगविद्या सिखाते थे । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के इन आठों अंग नीलकंठ ने केवल एक वर्ष में सिद्ध कर लिया। योगी से उन्होंने कुंजर, धोती, नेति, बस्ति आदि योगक्रियाओं की सिद्धि प्राप्त की। ब्रह्मविद्या, अक्षिविद्या, दहरविद्या आदि विद्याओं में भी सिद्ध हुए। इस तरह वे लगातार एक वर्ष गोपाल योगी के पास रहे। अन्य कोई योगी जीवनभर न सीख सकें, ऐसी

सभी योगकलाएँ नीलकंठ ने मात्र एक वर्ष में सिद्ध कर लीं।

नीलकंठ, गोपाल योगी की सेवा भी बड़े गुरुभाव से करते रहे। अंत में नीलकंठ ने गोपाल योगी को अपने पुरुषोत्तम स्वरूप का ज्ञान कराया। तथा अपने स्वरूप में नारायण के दर्शन देकर उन्हें दिव्य गति प्रदान की।

18. काठमांडू में राजा को आशीर्वाद

पर्वतों और जंगलों से गुजरते हुए नीलकंठ नेपाल के प्रसिद्ध नगर काठमांडू पधारे। उस समय (सन् 1796 के आसपास) नेपाल में पृथ्वीनारायण सहा का पौत्र रणबहादुर राज कर रहा था। गोरखा राज्य के राजा पृथ्वीनारायण सहा ने काठमांडू को अपनी राजधानी बनाई और गोरखा राज्य का विस्तार किया था। काठमांडू में नीलकंठ ने पशुपतिनाथ महादेव के दर्शन किए।

राजा रणबहादुर सहा को एक असाध्य रोग हुआ था। राजा ने रोग मुक्त होने के लिए अनेक प्रयत्न किये थे। परन्तु वे असफल रहे। इसलिए वह राज्य में आए हुए साधु-महात्मा, ब्राह्मण, पंडित, पुजारियों आदि सभी से अपना रोग दूर करने के लिए प्रार्थना करता रहता था। इस रोग को जब कोई मिटा न पाता, तो क्रोधित होकर उन सभी को राजा कैदखाने में डालकर उन्हें त्रस्त करता था। उसके ऐसे त्रास से शहर में साधु-सन्तों का आगमन बंद हो गया था।

नीलकंठ जब काठमांडू में पधारे तब उनके साथ कुछ साधु भी थे। साधुओं को जब यह ज्ञात हुआ, तब उन्होंने नीलकंठ को राज्य में प्रवेश करने से मना कर दिया। परन्तु उन्होंने कहा, 'साधु को कभी भय नहीं रखना चाहिए।'

नीलकंठ की दृढ़ता एवं प्रताप देखकर सभी साधु भय छोड़कर राज्य में प्रविष्ट हुए। यह खबर मिलते ही राजा ने नीलकंठ को अपने राजमहल में बुलाने की आज्ञा दी। राजपुरोहित वर्णी को अपने साथ लेकर राजदरबार में गया। राजा ने उनका सम्मान किया। उसने नीलकंठ को अपने असाध्य रोग की विस्तृत जानकारी दी, फिर रोग दूर करने के लिए अनुरोध किया। नीलकंठ को राजा पर दया आ गई।

उन्होंने कहा, 'आपके प्रारब्ध को कोई मंत्र-तंत्र जाननेवाला या कोई जादू-टोना जाननेवाला नहीं मिटा सकता। भगवान के नियमों का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता, इसलिए आदमी को जो भी दुःख आता है, उसे

प्रारब्ध और कर्म का ही फल समझना चाहिए। ऐसे समय में परमात्मा की प्रार्थना करते हुए धैर्य रखकर दु:ख को सहन करना चाहिए। क्योंकि ऐसी मनस्वी रीति से आपका दु:ख तो नहीं मिटेगा, उलटे अपने कर्मों के नये बंधन आप बाँध रहे हैं।'

वर्णी की मधुरवाणी से राजा को अंत:ज्ञान प्राप्त हुआ। उसने अपने कर्मों के संबंध में नीलकंठ से क्षमा माँगकर रोग मिटाने के लिए बिनती की।

करुणामूर्ति नीलकंठ ने हाथ में जल की अंजलि लेकर राजा को पी जाने का आदेश दिया। जैसे ही राजा ने उस प्रासादिक जल को श्रद्धापूर्वक अंगीकार किया, वर्णी के संकल्प का राजा पर तुरंत असर पड़ा। उसके पेट का शूल मंद हो गया। राजा को वर्णी के प्रति अत्यंत ही श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसने विनम्र भाव से वर्णी से कुछ माँगने के लिए कहा।

वर्णी ने मुस्कुराते हुए कहा: 'यदि आपको सेवा करके संतोष मानना हो, तो कैद किये हुए सभी साधुओं को शीघ्र मुक्त कर दीजिए। मुझे यही चाहिए।'

वर्णी की नि:स्पृहिता और संसार के प्रति अनासक्ति देखकर राजा अत्यंत प्रभावित हुआ। नीलकंठ की इच्छा को आज्ञा मानकर उसने तुरंत सभी साधुओं को मुक्त कर दिया। नीलकंठ ने उसे आशीर्वाद दिए।

यहाँ से बिदा होकर वर्णी उत्तर में तिब्बत की ओर चल दिए। आगे बढ़ने पर वर्णीराज उत्तर में फैले हुए चीन का अवलोकन करते हुए, तिब्बत के लामाओं के बौद्ध-विहारों से गुजरकर नेपाल के आदि वाराह तीर्थ पहुँचे। वहाँ से प्रस्थान करके वे सिरपुर पहुँचे।

19. तेलंगी ब्राह्मण का उद्धार

नीलंकठ सिरपुर में एक उद्यान में रुके। जहाँ चारों ओर बाबाओं ने अपना अड्डा जमा रखा था। उस समय सिरपुर में सिद्धवल्लभ राजा का शासन था। सिद्धवल्लभ एक उदार और धर्म-प्रिय राजा था। राजा ने नीलकंठ के दर्शन किए और वह बहुत प्रभावित हुआ। नीलकंठ से उसने प्रार्थना की, हे प्रभु, आप मेरे महल में निवास करके मुझे कृतार्थ करें। किन्तु नीलकंठ ने इस बिनती का अस्वीकार किया। इससे राजा ने गोपालदास नामक एक नैष्ठिक व्रतधारी साधु को नीलकंठ की सेवा में नियुक्त कर दिया। साधु

अत्यंत भावपूर्वक नीलकंठ की सेवा करता था। राजा प्रतिदिन उपदेश सुनने के लिए नीलकंठ के पास उपस्थित होता था।

उद्यान में अन्य आसुरी तांत्रिक माता, भैरव और भूत के उपासक थे। मंत्र-तंत्र और जादू-टोना के उपचार से वे लोगों को डराते रहते थे। बालब्रह्मचारी नीलकंठ के प्रति राजा के अपार स्नेह के कारण ये तांत्रिक ईर्ष्या करने लगे। एक दिन इसी कारण किसी तांत्रिक ने नीलकंठ के सेवक गोपालदास को मंत्र-विद्या से मूर्छित कर दिया। साधुओं ने राजा से कहा, 'अब आप जिसकी भक्ति करते हैं, उस वर्णी से कहिए कि आप समर्थ हो तो गोपालदास को जागृत करें।'

नीलकंठ ने गोपालदास के शरीर का स्पर्श किया कि वह तुरन्त होश में आ गया और नीलकंठ के चरणों में बैठ गया। सभी तांत्रिक यह देखकर हैरान रह गए। कुछ बाबा नीलकंठ का प्रभाव देखकर उनकी शरणागति स्वीकार करने आये, यह देखकर ईर्ष्यावश किसी ने इन तांत्रिकों पर मंत्राभिचार कर दिया। इस प्रकार आमने-सामने अभिचार प्रयोग होने लगे। अंत में नीलकंठ ने अपने सामर्थ्य से सभी मूर्च्छित तांत्रिकों को सचेत कर दिया। सभी ने नीलकंठ की शरणागति ली। नीलकंठ ने उन्हें सदाचारी तथा सच्चे साधु बनने के लिए उपदेश दिया।

उस समय सिरपुर में एक तेलंगी ब्राह्मण आ धमका था। वह अति लोभी था। अतः उसने राजा से हाथी और कालपुरुष दान में लिये थे। इसी कारण वह अति रूपवान होने पर भी योग्यता और लोभ से प्राप्त किये हुए दान से काला-कलूटा हो गया था। सभी उस ब्राह्मण की निंदा करते थे। वह दुःख से व्याकुल होकर रोने लगा।

नीलकंठ के चरणों में आकर वह गिर गया। अपने लोभ के लिए उसने नीलकंठ से क्षमा याचना की। नीलकंठ ने दया करके उस ब्राह्मण के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिए। वह तेलंगी ब्राह्मण पहले जैसा था वैसा ही रूपवान हो गया। उसने भी नीलकंठ का आश्रय ग्रहण किया। इस घटना को देखकर सिद्धवल्लभ राजा के मन में नीलकंठ के प्रति अत्यंत ही भक्ति-भाव पैदा हुआ। उस राजा को अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन देकर नीलकंठ जब सिरपुर से विदा होने लगे, तब राजा को अतिशय दुःख हुआ।

नीलकंठ ने कहा, 'आप मेरी छबि अपने मन में रखेंगे, तो हमेशा मैं आपके समीप ही रहूँगा।' संवत् 1853 का अन्नकूटोत्सव तथा कार्तिक पूर्णिमा का उत्सव मनाकर नीलकंठ सिरपुर से प्रस्थान करके कामाक्षी की तरफ बढ़ चले।

20. पिबैक की पराजय

आसाम में कामाक्षी तीर्थ में कामाक्षी देवी का एक बड़ा मंदिर है। यहाँ नीलकंठ के प्रभाव ने मानो जादू कर दिया। बालयोगी की मधुर वाणी में तंत्र-मंत्र और जादू-टोना के बजाय मात्र परमात्मा में विश्वास रखने और पवित्र जीवन जीने की बात सुनकर, मुमुक्षुओं की अपार भीड़ इकट्ठा होने लगी। सभी मुमुक्षु नीलकंठ के प्रति आकर्षित होने लगे। इससे अन्य साधुओं को नीलकंठ के प्रति द्वेष पैदा हुआ। लोगों के मन से अपना वर्चस्व कम न हो, इसलिए उन्होंने नीलकंठ को पराजित करने का निश्चय किया और पिबैक नामक एक कालीभक्त को नीलकंठ के विरुद्ध उत्तेजित किया।

वह महाकाली का उपासक, मूलतः एक मुमुक्षु ब्राह्मण था, परन्तु कुसंगति के कारण चरित्रहीन हो गया था। मांस-मदिरा और गाँजा-अफ़ीम का व्यसन करने के साथ चरित्र से भी वह भ्रष्ट हो चुका था। वह देवी की उपासना एवं भूत, भैरव की साधना करता था। रात्रि में स्मशान जाकर मलिन विद्या सीखता, गाली-गलौज़ करता और गले में मनुष्य की खोपड़ी पहने हुए त्रिशूल लेकर जगह-जगह लोगों को डराता फिरता था। मंत्र-तंत्र से लोगों को त्रस्त करता और सिर पर कंकू, बड़ी चोटी, नशे में उन्मत्त लाल-सुर्ख आँखें और डरावना परिवेश देखकर साधु-संत और योगी-यति भी उससे डर के मारे दूर रहते। वैष्णव संतों की कंठी तोड़कर वह उन्हें अपना शिष्य बनाता और भूत-भैरव की पूजा करवाता।

गाँव के बाहर फूलवाडी में वह नीलकंठ को मात करने के आशय से आ धमका। उसके साथ अर्धनग्न स्त्री-पुरुष निर्लज्ज एवं मदमस्त होकर चिल्ला-चिल्लाकर नाच रहे थे।

उसी फूलवाडी में कुछ संत भी आकर ठहरे थे। पिबैक को देखकर साधु काँपने लगे। वे सभी पिबैक की शरण में जाने के लिए तैयार हो गए।

नीलकंठ ने उन्हें निर्भय करते हुए कहा, 'आप क्यों डरते हैं? ऐसे मलिन देव-देवियों के उपासक से इतना विचलित क्यों हो रहे हैं? परमात्मा की कालशक्ति के बिना पूरे ब्रह्मांड में कोई किसी को नहीं मार सकता। अत: भय को छोड़ दो और उस तांत्रिक की और देखो भी मत!'

नीलकंठ की ऐसी शांत और निर्भीक वाणी से पिबैक अत्यंत क्रोधित हुआ। इससे डरे हुए लोग नीलकंठ को पिबैक की महिमा समझाने लगे और पिबैक के साथ लड़ाई मोल न लेने को कहने लगे। परन्तु नीलकंठ शांत एवं निश्चल थे। अचानक पिबैक ने एक वटवृक्ष पर उड़द के दाने डाले और वृक्ष तुरन्त सूख गया। यह देखकर साधु दिग्मूढ़ हो गए। वे गले में हाथ डालकर अपनी वैष्णवी कंठी तोड़ने का प्रयत्न करने लगे।

नीलकंठ ने कहा, 'अपना तिलक कभी नहीं मिटाना। वैष्णवी कंठी तोड़ना भी पाप है। इस तांत्रिक से भला क्यों डर रहे हो? वह चाहे तो पहले मुझ पर वह अपने मंत्र-विद्या का प्रयोग कर ले! यदि मुझे कुछ हुआ, तो तब आप अवश्य उसकी शरण में चले जाना।'

इतना कहकर उन्होंने पिबैक को ललकार दिया। पिबैक अत्यंत ही क्रोधित हुआ था। उसने कहा, 'अब तेरा काल आ गया है।'

नीलकंठ ने स्मित करते हुए कहा, 'तुम जो चाहो कर सकते हो। मैं, तुम्हारे सामने ही उपस्थित हूँ!' ऐसा कहकर नीलकंठ ने उसके सामने आसन लगा दिया।

सभी साधु आकर नीलकंठ के पीछे बैठ गए। पिबैक ने नीलकंठ को डराने के लिए मंत्र पढ़कर उड़द के दाने जोर से दूर पृथ्वी पर डाले। ज़मीन से धुएँ के गोले फूटने लगे। उसमें से कालभैरव ओर बटुकवीर प्रकट हुए। परन्तु वे वर्णी के समीप नहीं पहुँच सके। थोड़ी दूरी पर वे खड़े रह गए, तब पिबैक ने अनेक मंत्र पढ़े, परन्तु वे पिबैक पर ही हावी हो गए। उसे त्रिशूल से मारकर भूमि पर दे पटका। पिबैक लहू-लुहान हालत में मुँह से रक्त की उलटी करने लगा।

ऐसा पराजय उसने सोचा तक नहीं था। वह आगबबूला हो गया और उठकर उसने हनुमानजी की आराधना की। हनुमानजी प्रकट हुए। नीलकंठ को नमस्कार करके उन्होंने पिबैक के ही सिर पर पूरी शक्ति से मुष्ठि प्रहार किया तो वह बेहोश हो गया। हनुमानजी कहने लगे, 'तुम मुझे देवाधिदेव से लड़ने के लिए कहते हो? आज तो मैं तुम्हें ही मार डालूँगा।'

पवन-पुत्र ने पिबैक को इतना मारा कि उसे लहू की उलटी हो गई और आँखें बाहर की ओर निकल आईं। वह टूटे हुए विशाल वृक्ष की तरह निश्चेतन होकर पृथ्वी पर गिर गया!

पिबैक के कुछ शिष्यों तथा उसके स्नेहीजनों ने उसे होश में लाने के लिए गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की। नीलकंठ ने दया-दृष्टि करके पिबैक को जाग्रत किया। उसकी देह अत्यधिक पीड़ा से छटपटा रही थी। वह बोल भी नहीं सकता था। हड्डी-पसली टूटने से वह कराह रहा था। भूमि पर सरकते हुए वह नीलकंठ के पास आया और उनके चरण पकड़कर रोने लगा। उसने बार-बार नीलकंठ की क्षमा-याचना की। सभी अत्यंत आश्चर्य चकित हो रहे थे। क्योंकि आज अजेय तांत्रिक पिबैक छोटे से वर्णीराज के चरणों में गिड़गिड़ा रहा था। नीलकंठ के अनुग्रह से आज पिबैक का संपूर्ण आंतरिक परिवर्तन हो गया।

नीलकंठ ने कहा, 'पिबैक! जो सच्चे सिद्ध होते हैं, वे किसी को डराते नहीं। जो सही अर्थ में परमात्मा के आश्रित होते हैं, वे किसी से डरते नहीं। आज तुम देख रहे हो कि कैसी भी मंत्रशक्ति हो, परमात्मा की शक्ति

की तुलना में वह कुछ भी नहीं।'

पिबैक ने नीलकंठ की वाणी को अंतरमन से स्वीकार किया। अनिमिष दृष्टि से नीलकंठ के दर्शन करते हुए उसे अपार शांति का अनुभव हुआ। नीलकंठ ने उसे वैष्णवी दीक्षा दी और सौम्य वेश धारण करने का आदेश दिया। उसके शिष्यों को भी वैष्णवी दीक्षा देकर सभी को तुलसी की कंठी और तिलक धारण करवाए। सभी को आशीर्वाद देकर, अधर्मियों को अनाचार से मुक्त करके नीलकंठ वहाँ नवलखा पर्वत की और चल दिये।

21. नौ लाख योगियों का उद्धार

नवलखा पर्वत[2] में नौ लाख योगी रहते थे। वे इस स्थान पर हज़ारों वर्षों से तप कर रहे थे। वे सामान्य मनुष्य को प्रत्यक्ष न दिखते थे, परन्तु दिव्य स्वरूप से वे प्रभु-आराधना में मग्न रहते थे। प्रतिदिन यज्ञ करना, प्रातः तथा सायंकाल में स्नान-संध्या करना तथा तपस्या करके प्रभु को प्रसन्न करना उनकी दिनचर्या थीं। प्रत्येक योगी को स्नान के लिए अपना अलग कुंड था और आराधना के लिए अलग यज्ञकुंड भी था। इस तरह वहाँ नौ लाख यज्ञकुंड और नौ लाख छोटे-छोटे जलाशय थे। रात-दिन सिद्ध योगी प्रभुस्मरण में लीन रहते थे। इन कृशकाय सिद्धों की नाड़ियाँ दिखाई दे रही थीं। लंबी जटा और रूई-सी लम्बी श्वेत दाढ़ी में वे अत्यंत प्रभावक दिख रहे थे।

एक दिन प्रातःकाल ध्यानस्थ योगियों को मधुर आकाशवाणी सुनाई दी, 'आप जिन पुरुषोत्तम नारायण के दर्शन के लिए वर्षों से तप कर रहे हैं, आज आप सभी को नीलकंठ के रूप में उनके साक्षात् दर्शन होंगे। पुरुषोत्तम नारायण ने इस पृथ्वी पर अवतार धारण किया है। आप सभी के कल्याण के लिए वे आ रहे हैं।'

---

2. संप्रदाय के ग्रंथों के अनुसार यह संभवतः कोई पर्वतमाला का नाम है। जहाँ नौ लाख योगी तपस्या करते थे। इसी कारण वह संप्रदाय में नवलखा पर्वत के रूप में प्रसिद्ध है। हालाँकि ऐसा भौगोलिक नाम नक्शे में दिखाई नहीं देता। पूर्व भारत में मेघालय राज्य में शिलोंग के पास यह पर्वतमाला होगी, ऐसा अनुमान है । नीलकंठ इस पर्वत से उतरकर बालवाकुंड पधारे थे। अतः यह पर्वतमाला पूर्व भारत में बांग्लादेश, मिज़ोरम या त्रिपुरा राज्य में हो सकती है।

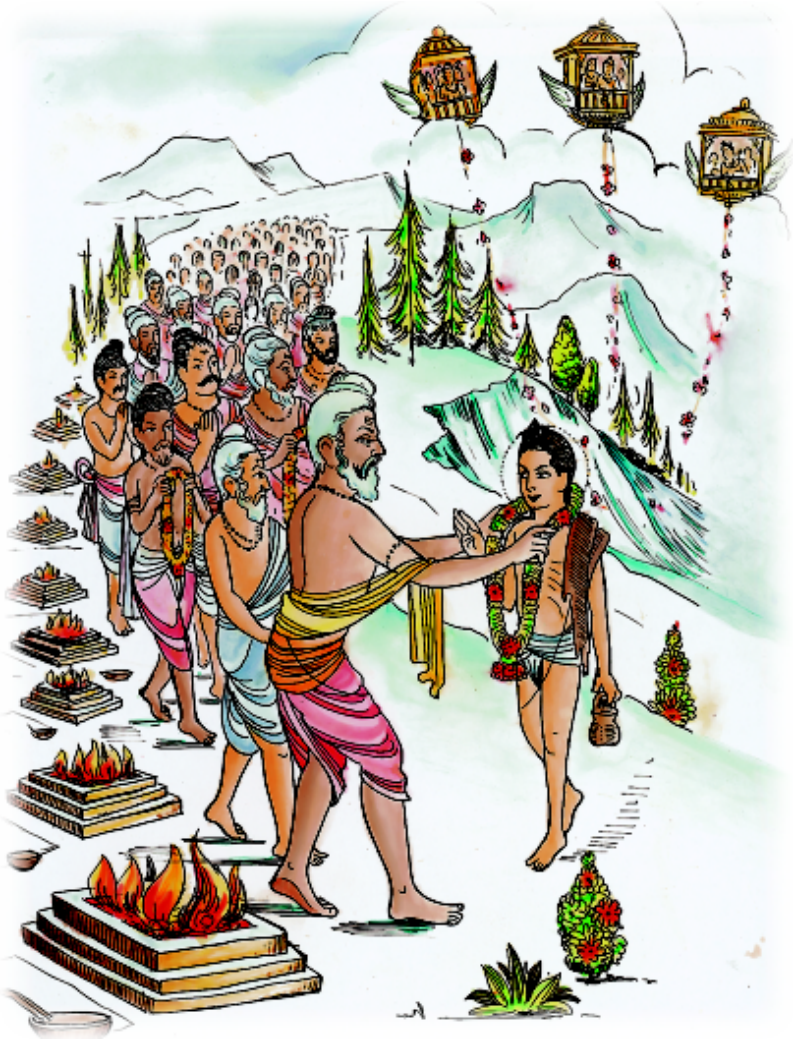

यह सुनकर सभी हर्ष-पुलकित हो उठे और प्रभु के स्वागत की तैयारियाँ करने लगे। कोई नीलकंठ के लिए फल एकत्र करता था, तो कोई फूलों की माला बनाता था।

नीलकंठ ने नवलखा पर्वत की तलहटी से पर्वत पर दृष्टि गड़ाई और मार्मिक मुस्कान के साथ चढ़ाई शुरू की। योगियों को पुनः आकाशवाणी सुनाई दी, 'कल प्रातःकाल आप सबको पुरुषोत्तम नारायण के दर्शन होंगे।

जिससे आपको अक्षरधाम की प्राप्ति होगी।'

दूसरे दिन प्रभात समय में नीलकंठ योगियों के सामने आ पहुँचे। सभी ने अत्यंत आनंद तथा भक्तिभाव से नीलकंठ का सन्मान किया। पुष्पमालाओं से स्वागत किया। देवों ने इस अनुपम दृश्य को देखकर पुष्पों की वर्षा की। वेदों की ऋचाओं से वातावरण पवित्र हो गया। देखते ही देखते नीलकंठ ने नौ लाख स्वरूप धारण किए। प्रत्येक योगी से वे एक एक रूप में गले मिले। प्रत्येक के यज्ञकुंडों में आहुति दी। सभी के जलाशयों से जल पीकर उन्हें तीर्थत्व दिया। नीलकंठ तीन दिन योगियों की सेवा ग्रहण करते रहे।

जब वे बिदा हो रहे थे, सभी ने गद्‌गदभाव से प्रार्थना की, 'हे नीलकंठ प्रभु! आपके दर्शन से हमारा कल्याण हो चुका है। हे अक्षराधिपति, आपसे हम यही प्रार्थना करते हैं कि आपकी मूर्ति हमारे अंतर में सदा के लिए निवास करे।'

उनकी प्रार्थना सुनकर वर्णीराज ने 'तथास्तु!' कहकर आशीर्वाद दिया।

सभी सिद्ध योगियों ने भग्न हृदय से उन्हें बिदा दी। मार्ग में वे बालवा कुंड पधारे। कुंड के पानी और आसपास के पत्थरों से सदा अग्नि की ज्वालाएँ निकलती रहती थीं। इस स्थान का दर्शन करके वर्णीराज नवद्वीप में चैतन्य महाप्रभु की जन्मभूमि पधारे। यहाँ से गौड़ीय संप्रदाय की व्यासपीठ शांतिपुर में दर्शन करके नीलकंठ गंगा-सिंधु के संगम स्थान गंगासागर पहुँचे। इस तीर्थराज में नीलकंठ ने मकरसंक्रांति का शुभ स्नान किया। वहाँ लगे हुए मेले में तीन दिन तक मुमुक्षुओं को दर्शन देकर नाव द्वारा समुद्र की खाड़ी उतरकर कपिलाश्रम पधारे।

22. धर्म का उपदेश

कपिलाश्रम अत्यन्त ही एकान्त और मनोहर तीर्थ था। जहाँ सांख्य दर्शन के आचार्य कपिलमुनि ने वर्षों तक तप किया था। कहा जाता है कि आज भी अनेक भक्तजनों को कपिलमुनि के दर्शन होते हैं। आश्रम के चारों ओर झाड़ियाँ तथा हरे-हरे पेड़-पौधे शोभा में वृद्धि कर रहे थे। कपिलमुनि ने मूर्तिमंत होकर नीलकंठ का स्वागत किया। ऐसा नयनरम्य स्थान देखते ही नीलकंठ को ध्यान करने की उमंग पैदा होती थी। वे स्नान के पश्चात् ध्यान

में लीन हो गए। वे ध्यानदशा में इतने एकाग्र हो चुके थे कि छः छः दिन बीत जाने पर भी उनका ध्यान नहीं छूटा।

देवगण आकुल-व्याकुल होने लगे। उनको लगा कि नीलकंठ यदि इसी प्रकार ध्यानलीन रहेंगे तो धरती पर फैले हुए अधर्म का नाश कैसे होगा? सभी देवता नीलकंठ की स्तुति करने लगे। पृथ्वी भी मानो नीलकंठ के चरणों में आर्द्रभाव से प्रार्थना करने लगी! अंततः नीलकंठ ध्यान से जाग्रत हुए। उन्होंने सभी को अभयवर देते हुए, धर्म की पुनः स्थापना का संकल्प किया और दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया।

चलते-चलते संध्या हो गई। वर्णी एक गाँव के पास आ पहुँचे। जहाँ ग्रामवासी बैठे हुए आपस में बातें कर रहे थे।

नीलकंठ ने उनसे पूछा, 'यहाँ योगी-यति के रहने का कोई स्थान है क्या?'

एक व्यक्ति ने कहा, 'यहाँ बनिये के घर के सामने साधुओं का रामजी मंदिर है। वहाँ सभी साधु-संत रहते हैं, इसलिए आप वहाँ जाइए।'

नीलकंठ मंदिर में पधारे। साधुओं ने उन्हें आसन दिया। नीलकंठ स्नान के बाद मंदिर के चौक में बिराजमान हुए।

संध्या-आरती के पश्चात् रामायण की कथा प्रारंभ हुई। गाँव के स्त्री-

पुरुष आकर कथा सुनने लगे। नीलकंठ ने देखा कि मंदिर में स्त्री-पुरुष अपनी मर्यादा के अनुसार नहीं बैठते। उन्हें यह बात अच्छी नहीं लगी। कथा समाप्त होते ही स्त्री-पुरुष साधु के चरण-स्पर्श करके जाने लगे। कुछ स्त्रियाँ नीलकंठ के चरण-स्पर्श करने आईं, किन्तु वे वहाँ से शीघ्र उठकर अपने मुकाम पर चले गए। उनको यह बात भी देखने में आई कि कुछ स्त्रियाँ आश्रम के साधुओं के हाथ-पैर दबाने की सेवा कर रही हैं। साधुओं का इतना अपवित्र व्यवहार देखकर बालयोगी को घृणा उत्पन्न हुई। वे धर्माचरण में हो रही शिथिलता को बर्दाश्त करनेवाले नहीं थे। उन्होंने साधुओं से कहा, 'आप रामायण की कथा तो करते हैं, परन्तु धर्म का पालन क्यों नहीं करते? शास्त्र-आज्ञा के अनुसार साधु, स्त्रियों को सीधा उपदेश नहीं दे सकते। त्यागी साधुओं को स्त्री और धन का संपूर्ण त्याग करना चाहिए।'

यह सुनकर साधु क्रोधित होकर कहने लगे, 'अरे बालक, दो दिन का तू, हमें उपदेश देता है? भाग जा यहाँ से, नहीं तो तुझे मार भगाएँगे।'

नीलकंठ उसी पल अदृश्य हो गए। सभी साधु आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि मंदिर के बंद दरवाजे से यह बालक अदृश्य कैसे हो गया? परन्तु नीलकंठ, वणिक के घर के चौक में जाकर बिराजमान हुए थे।

पवनपुत्र हनुमानजी उसी समय नीलकंठ के समीप आ पहुँचे। अधर्मी साधुओं द्वारा हुआ नीलकंठ का अपमान, वे सहन नहीं कर पाए। उन्होंने प्रभु का चरण-स्पर्श करके डंडा उठाया। मंदिर में जाकर उन्होंने सभी साधुओं और उनकी शिष्याओं की भारी पिटाई की।

भयभीत होकर साधु चिल्लाने लगे, 'हे पवनपुत्र! आप हमें क्यों मार रहे हैं? हमने क्या अपराध किया है?'

हनुमानजी ने बताया, 'तुम सभी ने नीलकंठ को बिना अपराध के इस मंदिर से क्यों निकाल दिया? क्या तुम जानते हो, वे कौन हैं? नीलकंठ साक्षात् भगवान हैं। जाइए और उनसे चरण पकडकर उनकी क्षमा माँगिए। पूरे सम्मान के साथ उन्हें मंदिर में लाकर बिराजमान करें। तभी आप को मुक्त करूँगा। नहीं तो आज सभी को यमलोक पहुँचाकर रहूँगा।'

साधुओं ने सभी स्त्रियों को चले जाने का आदेश दिया। मंदिर के दरवाजे खोलकर सभी उस वणिक के घर आ पहुँचे। सभी ने नीलकंठ से

बार-बार क्षमा माँगी : 'हम आपको पहचान नहीं सके। आप तो साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण हैं। आज से हम आपकी रुचि के अनुसार स्त्री और धन से दूर रहेंगे। स्त्रियों को उपदेश नहीं देंगे। आप जैसा आदेश देंगे, हम उसीके अनुसार आचरण करेंगे। परन्तु आप हनुमानजी से हमें मुक्त करिए।'

नीलकंठ ने दयाभाव से सभी को क्षमा किया और पवनपुत्र से संकेत करके साधुओं को मुक्त करने की सूचना दी। सभी साधु मुक्त होकर पवित्र जीवन जीने लगे। पवनपुत्र के अदृश्य होने के बाद साधुओं ने नीलकंठ को दो दिन मंदिर में रखा और बहुत सेवा की। नीलकंठ दो दिन के बाद साधुओं को नियमबद्ध रहने का आदेश देकर वहाँ से चल दिए।

23. नीलकंठ जयरामदास के घर पर

अविरत पद-यात्रा के कारण नीलकंठ अत्यंत थक गए थे। सूर्य डूब रहा था। थोड़ी-सी दूरी पर एक गाँव दिखाई दिया। नीलकंठ गाँव की ओर बढ़े। गाँव में एक वैरागी तथा दूसरा संयोगी साधु था। नीलकंठ त्यागी साधु के मंदिर में पधारे। महंत को नीलकंठ के दर्शन से अत्यंत शांति का अनुभव हुआ। उसने नीलकंठ को दो-तीन दिन तक वहाँ रुकने का निवेदन किया।

संयोगी साधु को एक पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। नीलकंठ जिस मंदिर में रुके थे, दोनों पुत्रियाँ वहाँ 'तुलसी रामायण' पढ़ने आती थीं। साधु प्रातः और सायंकाल में रामायण सुनाता था। दोनों कन्याओं को कुछ समझ में नहीं आता, तो साधु से उसका अर्थ पूछती थीं। परंतु कोई कठिन प्रश्न का वह सही उत्तर नहीं दे पाता था।

एक दिन दोनों कन्याओं ने प्रश्न किया तो साधु असमंजस में पड़ गया। उसे अर्थ समझ में नहीं आया। तब नीलकंठ ने कहा, 'महंतजी, मैं समझाऊँ?'

फिर नीलकंठ ने एक के बाद एक सभी प्रश्नों के उत्तर दे दिये। दोनों कन्याएँ प्रसन्न होकर अपने घर गईं। उन्होंने अपने माता-पिता को सारी बातें कही और कहा, 'नीलकंठ बाल ब्रह्मचारी हैं। अत्यंत तेजस्वी हैं। ईश्वरमूर्ति हैं। इसलिए हम, उन्हें अपने घर भोजन के लिए बुलाएँगे।'

पुत्रियों की बात सुन कर माता-पिता को अत्यंत जिज्ञासा हुई। वे आग्रह पूर्वक नीलकंठ को अपने कृष्णमंदिर में ले आये। उस ब्राह्मण की

पत्नी अति भावुक थी। उसने स्वादिष्ट भोजन पकाया। दूध, मलाई, मक्खन, दही, साकर के कटोरे भरकर रख दिये। नीलकंठ ने भोजन कर लिया, तब ब्राह्मण ने आग्रह किया कि आप मेरे घर में ही निवास करें। मैं अपने पुत्र जयरामदास को आपकी सेवा में रख रहा हूँ। आप यहीं निवास करें।'

इस भाविक दंपती के भावाग्रह के कारण नीलकंठ कुछ दिन तक रुके। उनकी श्रद्धा और भक्ति से प्रसन्न होकर नीलकंठ ने अपने दिव्य स्वरूप का उन्हें दर्शन दिया।

24. जांबुवान का कल्याण

जयरामदास को नीलकंठ से अत्यंत प्रीति हो गई थी। दिन-रात वह नीलकंठ की सेवा में तत्पर रहता था। सायं-प्रातः नीलकंठ जयरामदास को शास्त्र और योगविद्या सिखाते थे। एक दिन नीलकंठ ने पूछा, 'जयराम! यह कमल-ककड़ी तुम प्रतिदिन कहाँ से लाते हो?' जयरामदास ने कहा, 'यहाँ एक सरोवर है। वहीं से मैं और मेरा मित्र कृष्ण तंबोली यह फल लाते हैं।'

'अच्छा! मुझे वह सरोवर दिखाओगे? मुझे ताजी कमलककड़ी खाना है।' नीलकंठ ने कहा, 'चलो हम सरोवर पर घूमेंगे, आनंद करेंगे।' जयरामदास खुश होकर तैयार हो गया।

सूर्य जब पश्चिम में ढलने लगा, तब नीलकंठ और जयरामदास सरोवर के किनारे पहुँचे। कृष्ण तंबोली ने नाव तैयार रखी थी। तीनों नाव पर सवार हुए। ठंडी हवा चल रही थी। तंबोली झील के उस पार दिख रहे जंगल की बातें बता रहा था और चलती नाव से कमल-ककड़ी तोड़कर नीलकंठ को खिला रहा था।

अचानक तंबोली ने कहा, 'वर्णीराज! दूर पेड़ दिखाई दे रहे हैं न? वह विकराल प्राणियों का जंगल है। रात को मेरे घर तक हिंसक पशुओं की गर्जना सुनाई देती है। वहाँ कोई नहीं जा सकता।'

नीलकंठ इन बातों को बड़े ध्यान से सुन रहे थे। फिर नीलकंठ ने कहा, 'लाइए पतवार, थोड़ी देर मैं नाव चलाऊँ।' जयरामदास ने पतवार लेकर नीलकंठ के हाथों में थमा दी।

पवन की दिशा बदली और नीलकंठ ने गति तेज़ कर दी। कुछ क्षणों

में नाव सरोवर के किनारे पहुँच गई। कृष्ण तंबोली और जयराम के होश उड़ने लगे। उन्होंने सोचा, 'नीलकंठ तो चले अपने वन की ओर।' नीलकंठ छलाँग लगाकर किनारे पर उतर गए। जयराम चिल्लाया, 'नीलकंठ! वहाँ नहीं जाना है।'

तंबोली ने कहा, 'वर्णीराज! यह जंगल घूमने लायक नहीं हैं। यहाँ वहशी पशुओं का भय है और संध्या हो चुकी है, पशु भी पानी पीने के लिए सरोवर की ओर आते ही होंगे।'

परन्तु नीलकंठ ने मानो कुछ सुना ही नहीं। उनके पीछे-पीछे दोनों को बिना इच्छा से उतरना पड़ा। तंबोली मना करता रहा, परन्तु नीलकंठ वन में बढ़ते चले। पशुओं की गर्जना से दोनों के हृदय में कँप-कँपी छूटती थी। अचानक दूर से एक चीख सनाई दी। तंबोली और जयराम थर-थर काँपने

लगे। सूखे पत्तों की मर्मर ध्वनि सुनाईं दीं। डालियों पर बैठे परिन्दे उड़ गए। दो बंदर कूदकर पेड़ की सबसे ऊँची टहनियों पर चढ़ गए। झाड़ियों में कुछ हलचल हुई और एक भयंकर भालू नीलकंठ की ओर दौड़कर आया।

'नीलकं...ठ!' तंबोली और जयराम ने पुकार की और निकट के पेड़ पर चढ़ गए। उनके होश उड़ गए थे। गला सूखने लगा था। दोनों डालियों पर चिपककर पुतले की तरह स्थिर हो गए थे। 'भालू निश्चत ही नीलकंठ को मार डालेगा।' इस विचार से दोनों फटी आँखों से नीलकंठ तथा भालू की ओर देख रहे थे। दोनों ने देखा कि भालू नीलकंठ के समीप आकर झुक गया। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। नीलकंठ ने भालू को आशीर्वाद देते हुए कहा 'अब जाइए।' भालू फिर एकबार नीलकंठ के चरणों में झुका और झाड़ियों में अदृश्य हो गया।

नीलकंठ ने तंबोली को आवाज़ लगाई। दोनों मित्र थर-थर काँपते हुए पेड़ से नीचे उतरे। दोनों के मन अब तक भयभीत थे। नीलकंठ ने कहा, 'चलिए, वापस घर चलते हैं।' तीनों झील के किनारे पर खड़ी नाव में सवार होकर तेज़ी से घर की ओर चल दिये। कुछ देर बाद तंबोली ने पूछा, 'वर्णीराज! भालू आपको देखकर शांत क्यों हो गया? वह क्यों रो रहा था? कौन था वह? आपको प्रणाम करके क्यों चला गया?'

नीलकंठ ने कहा, 'वह जांबुवान था। श्रीकृष्ण के समय में उसने श्रीकृष्ण की सेवा की थी। परन्तु उसके मन में शंका रह गई थी, इसलिए वह भटकता रहा था। आज उसका कल्याण हो गया। अब वह शरीर-त्याग करके मनुष्य के रूप में सत्संग में जन्म लेगा। उस समय उसे मेरा संपर्क होगा और उसे अक्षरधाम की प्राप्ति होगी।'

जयरामदास और तंबोली अत्यंत विस्मित हुए। घर पहुँचकर जयराम और तंबोली ने अपने परिवारजनों को भालू के चमत्कार की बात बताई और कहा, 'नीलकंठ साक्षात् भगवान हैं।'

यह बात एक ने दूसरे से बताई। दूसरे ने तीसरे से कही, इस प्रकार सारे गाँव में चमत्कार की बात फैल गई। नीलकंठ के दर्शन के लिए जयरामदास के घर सुबह-शाम लोगों का तांता लग गया। चारों ओर नीलकंठ की जय-जयकार होने लगी।

25. नीलकंठ की खोज में

सुबह का समय था। मुर्गे ने अभी बाँग नहीं पुकारी थी। नीलकंठ जागे और जयरामदास के परिवार तथा भालू का कल्याण हो गया है, यह सोचकर उन्होंने गाँव से प्रस्थान करने का निश्चय किया। घर के सभी सदस्य प्रगाढ़ निद्रा में थे। नीलकंठ धीरे से कमंडलु लेकर दरवाजे पर आये। दरवाजा अपने आप खुल गया। नीलकंठ शीघ्र जंगलों की ओर निकल पड़े।

पौ फटी। मुर्गे ने बाँग दी। सूर्य की हलकी किरणें आकाश में छाने लगीं। जयरामदास की माता ने उठकर देखा तो नीलकंठ नहीं थे! उन्होंने सोचा, 'शायद स्नान करने गए होंगे।' उन्होंने सरोवर-तट पर जाँच की। नीलकंठ नहीं मिले। जयराम और उसके पिता ने गाँव की गलियाँ ढूँढ़ डालीं। जगह-जगह नीलकंठ को खोजा। वन में देखा, फूलवाड़ी में देखा, परन्तु नीलकंठ कहीं नहीं थे। जयराम तथा उसके माता-पिता की भूख-प्यास उड़ गई। सारा गाँव उदास हो गया। सभी ने सोचा, 'हमारी तो कुछ गलती नहीं हो गई? नीलकंठ हमें रोता छोड़कर क्यों चले गए होंगे?'

जयराम की माता आकुल-व्याकुल हो उठीं। उन्होंने जयराम को तैयार किया, एक पोटली में भोजन रखकर कहा, 'बेटे! नीलकंठ प्रभु जहाँ से मिलें, तुम उन्हें वापस बुला लाओ। उनके बिना हम कैसे जिएँगे? हमसे कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा माँगना, परन्तु नीलकंठ को वापस लेकर आओ। नीलकंठ तो हमारे भगवान हैं।'

जयराम निकल पड़ा नीलकंठ की खोज में।

26. नीलकंठ से पुनर्मिलन

नीलकंठ जगन्नाथपुरी की दिशा में अत्यंत तेज़ गति से जा रहे थे। अचानक उन्होंने पुकार सुनी, 'अरे नीलकंठ वर्णी' नीलकंठ ने मुड़कर देखा।

जयरामदास दौड़ता, हाँफता, पुकारता हुआ आ रहा था। बीस दिन की खोज के बाद जयरामदास को नीलकंठ का संसर्ग हो पाया था। जयराम दौड़कर नीलकंठ के चरणों में लिपट पड़ा, 'महाराज! हमारे अपराध को क्षमा कीजिए। हमारी भूल क्षमा करिए। चलिए, मेरे घर वापस चलिए। अब

मैं आपको आगे नहीं जाने दूँगा। मेरे माता-पिता कल्पान्त कर रहे हैं। उन्हें खाना-पीना अच्छा नहीं लग रहा है । दिनभर रोते रहते हैं। सारा गाँव उदास हो गया है। मेरी बहनें और कृष्ण तंबोली तो पागल हो गए हैं। आप शीघ्र ही मेरे घर चलिए । अब मैं और आगे नहीं जाने दूँगा।' जयराम की प्रार्थना सुनकर नीलकंठ ने अपने प्राकट्य का उद्देश्य बतलाया। जयरामदास अब कुछ नहीं बोल पाया।

आखिर नीलकंठ ने जयरामदास से कहा, 'जयराम! तुम मेरे साथ चलो। हम जगन्नाथपुरी की यात्रा पर चलेंगे।'

जयराम के मन में तुमुल द्वन्द्व चलने लगा, न वह वर्णी को छोड़ सकता था, न तो माता-पिता के स्नेह को, परन्तु वर्णी के स्नेह की जीत हुई। वह जगन्नाथपुरी के लिए तैयार हो गया। चलते-चलते घने वन में जयरामदास को नीलकंठ के अनेक दिव्य अनुभव हुए।

नाव में बैठकर खाड़ी पार करके वे भुवनेश्वर पहुँचे। भुवनेश्वर महादेव का दर्शन करके तीन दिन के बाद वे जनकपुर पहुँचे।

27. नीलकंठ जगन्नाथपुरी में

नीलकंठ जनकपुर में इंद्रद्युम्न सरोवर के तट पर आ पहुँचे। जगन्नाथपुरी के प्रसिद्ध मंदिर से जनकपुर लगभग दो किलोमीटर के अन्तर पर स्थित है।

जगन्नाथपुरी अति पवित्र प्राचीन तीर्थ है। यहाँ भगवान श्रीकृष्ण की अस्थि पर विशाल मंदिर बनाया हुआ है। हज़ारों तीर्थवासी प्रतिदिन मंदिर में दर्शन करने आते हैं। नीलकंठ प्रभु भी प्रतिदिन जगन्नाथपुरी आकर दर्शन करके मंदिर के गरुड़स्तंभ के नीचे ध्यान लगाकर बैठ जाते। मंदिर में हो रही भागवत कथा वे भक्तिभावपूर्वक सुनते थे।

नीलकंठ के दर्शन से पुजारीजी अत्यंत भाव-विभोर हो गए। पुजारीजी जगन्नाथजी के भोग की थाली का प्रसाद नीलकंठ को देते थे। नीलकंठ भी उनकी भावपुष्टि करते थे। प्रतिदिन समुद्र-स्नान करके मंदिर के बाहर स्थित वट-वृक्ष के नीचे नीलकंठ ध्यान करते और चंदन सरोवर जाकर योग किया करते थे। उनकी ऐसी अद्‌भुत स्थिति देखकर लोग आकर्षित होते। पुरी में

एक महान बालब्रह्मचारी योगेश्वर पधारे हैं, यह समाचार पुरी के राजा को मिला। वे नीलकंठ के दर्शन से कृतार्थ हो गए। वे प्रतिदिन नीलकंठ के दर्शन के लिए आते और उनका उपदेश भावपूर्वक सुनकर आध्यात्मिक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करते थे। राजा ने नीलकंठ की अलौकिक शक्ति देखकर अपने गुरु के रूप में उन्हें स्वीकार किया।

इंद्रद्युम्न सरोवर पर नागा बाबाओं ने अपना अड्डा जमा लिया था। ये बाबा मुमुक्षु यात्रिकों को भरमाते और स्त्रियों को भ्रष्ट करते थे। मद्य के नशे में चूर होकर शस्त्रों का प्रयोग करते और आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। नीलकंठ के प्रति राजा की प्रीति तथा यात्रियों और स्थानीय भक्तों में बालयोगी के प्रति आकर्षण देखकर बाबाओं को नीलकंठ के प्रति ईर्ष्या होने लगी।

रथयात्रा का उत्सव आया। जगन्नाथपुरी में रथयात्रा के उत्सव का अपने आप में एक अनूठा महत्त्व है। यहाँ के धार्मिक रीति-रिवाजों के अनुसार प्रजा जब भक्ति-भावपूर्वक भगवान को रथ में बिठाकर रथ खींचती है, तब राजा भी यह सेवा दासभाव पूर्वक करता है। रथयात्रा के इस उत्सव में नीलकंठ महाप्रभु को भी राजा ने एक सुशोभित रथ में बिराजमान किया।

राजा और प्रजा ने अत्यंत ही भक्तिपूर्वक नीलकंठ के रथ को खींचा। यह देखकर नागा बाबा वर्णीराज से अत्यंत द्वेष करने लगे।

एक दिन नीलकंठ इंद्रद्युम्न सरोवर के तट पर नित्यकर्म के बाद ध्यान में बैठे थे, तब एक वैरागी ने उन्हें हिलाकर कहा, 'अरे... बालक! उठ... सामने से हरी सब्जी – चौलाई की भाजी तोड़ ला।'

परन्तु नीलकंठ ने उसकी एक भी न सुनी। साधु ने फिर से क्रोधित होकर कहा, 'सुनता नहीं क्या? जा चौलाई की भाजी तोड़ ला।'

नीलकंठ ने कहा, 'उसमें तो जीव है। मैं उसे नहीं तोडूँगा।'

यह सुनकर वैरागी क्रोधित हो गया और तलवार निकालकर नीलकंठ को मारने के लिए दौड़ा। किन्तु नीलकंठ अडिग, शांत और स्थिर बैठे थे। जयरामदास नीलकंठ की सेवा में साथ ही था। उसने डर के मारे चीख-पुकार कर दी। इस कोलाहल से अन्य बाबा भी दौड़कर आये। नीलकंठ के प्रति उन्हें सहानुभूति का भाव था, इसलिए वे उन्हें बचाने के लिए खड़े हो गए। इस तरह आमने-सामने दो पक्ष हो गए और दोनों पक्षों में युद्ध छिड़ गया। सभी बाबा आपस में भीड़ गए।

जयरामदास दौड़ता-हाँफता पुरी पहुँचा और कहने लगा, 'बचाओ... बचाओ... नीलकंठ के प्राण संकट में है।'

राजा को मालूम हुआ तो, उन्होंने तुरंत अपने शस्त्रधारी सिपाहियों को नीलकंठ की रक्षा में भेज दिये। तथा स्वयं भी अपने सैनिकों के साथ भी पहुँचे। सभीने मिलकर बाबाओं पर धावा बोल दिया। घोर युद्ध के फलस्वरूप बाबाओं के सिर पृथ्वी पर गिरने लगे। आसुरी बाबाओं का विनाश हुआ और जो अन्य बचे थे, वे वहाँ से भाग निकले।

राजा, नीलकंठ के समीप आए। बालयोगी पद्मासन लगाकर स्थिरवृत्ति से ध्यान में बैठे थे। नीलकंठ की निश्चलता देखकर राजा असाधारण रूप से प्रभावित हुए। राजा ने उन्हें अपने महल में पधारने का अति आग्रह किया, परन्तु राजा की प्रार्थना को नीलकंठ ने अस्वीकार किया और उन्हें आशीर्वाद देकर मानसपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। नीलकंठ पुरी में दस माह तक रुके। यहाँ पुजारीजी का भक्तिभाव और छलकपट दोनों देखे। इस प्रकार धर्म की जय हुई तथा असुर आपस में लड़ मरे।

28. मानसपुर में असुरों का नाश

निरन्तर पद-यात्रा करते हुए नीलकंठ मानसपुर आ पहुँचे। नगर के बाहर एक उद्यान में उन्होंने निवास किया। उद्यान का माली नन्हें से बालयोगी के असाधारण व्यक्तित्व का दर्शन पाकर भाव-विभोर हो गया। वह प्रतिदिन सुबह-शाम फूलों की माला गूँथकर नीलकंठ को अर्पण करता और ताज़ा फल एवं कंदमूल भी सेवा में अर्पण करता था।

नगर के राजा सत्रधर्मा को माली ने नीलकंठ की महिमा सुनाई। अतः राजा नीलकंठ का दर्शन करने आया। उसे दर्शनमात्र से अद्‌भुत शांति हुई। वह अपनी रानी के साथ प्रतिदिन नीलकंठ के उपदेश सुनने आने लगा। एक दिन नीलकंठ ने विष्णु और शालिग्राम की पूजा का माहात्म्य कहा। इससे राजा सत्रधर्मा को शालिग्राम प्राप्त करने की इच्छा हुई। उद्यान में अन्य आडम्बरी साधु भी रहते थे। उनके महंत के पास अनेक शालिग्राम थे। राजा ने एक दिन एक शालिग्राम की माँग की। महंत क्रोधित होकर कहने लगा, 'यह कोई माँगने की चीज़ है? इसकी तो विधिवत् पूजा करनी पड़ती है। तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं?'

परन्तु राजा ने उसकी अड़बंग पूजाविधि देखी थी। राजा ने नीलकंठ से

सारी बात कही। दूसरे दिन नीलकंठ के कहने पर जयरामदास ने महंत के पास आकर शालिग्राम माँगा। महंत अति क्रोधित हुआ और हाथ में त्रिशूल लेकर जयराम को मारने के लिए तैयार हो गया। जयराम किसी तरह बचकर नीलकंठ के पास आ गया।

उसी रात्रि को नीलकंठ के संकल्प से मंदिर के सभी शालिग्राम उड़कर गंडकी नदी में जा गिरे। दूसरे दिन खोजने पर भी शालिग्राम नहीं मिले, तो महंत ने सोचा कि राजा ने चोरी करवा दी होगी या नीलकंठ का सेवक जयराम ही शालिग्राम ले गया होगा। अतः क्रोधित होकर वह उसी समय जयराम को मारने के लिए उद्यत हुआ। परन्तु जब वह नहीं मिला, तो महंत अपने अन्य शिष्यों के साथ आकर बालयोगी पर पत्थर फेंकने लगा। परन्तु एक भी पत्थर नीलकंठ को नहीं लगा। जयरामदास ने आकर देखा तो वह भयभीत हो गया। उसने राजा के पास जाकर शिकायत की। घटना की गंभीरता को समझते हुए राजा और नगरजन बड़ी संख्या में उद्यान की ओर आने लगे। राजा के सशस्त्र सैनिकों और महन्त के शिष्यों के बीच युद्ध छिड़ गया। साधुओं का नाश हुआ। नगर में इसी कारण शांति की स्थापना हुई। नीलकंठ ने राजा को दिव्य दर्शन देकर वहाँ से विदाई ले ली।

रास्ते में नीलकंठ ने जयराम को बहुत उपदेश दिया। साधु होने के लिए भी प्रेरणा दी। परन्तु वह यही कहता रहा कि आप मेरे घर वापस चलिए, मेरे माता-पिता आपकी राह देख रहे हैं।

अंत में नीलकंठ ने उसे समझाकर वापस घर भेज दिया और कहा, 'जब भी तुम्हें दुःख हो, तुम मुझे याद करना। जब भी त्यागी होने की इच्छा जाग्रत हो, तुम मुझे ढूँढ़ता हुआ सौराष्ट्र प्रदेश की ओर आना । मैं तुम्हें वहाँ मिलूँगा।'

आखिर नीलकंठ के चरण-स्पर्श करके जयराम दुःखी मन से घर की ओर चल दिया। नीलकंठ ने वेंकटाद्रि का मार्ग तय करना प्रारंभ किया।

29. रता बशिया का कल्याण

वेंकटाद्रि के मार्ग पर एक घना और डरावना जंगल आया। जहाँ दिन में भी सूर्य की किरणें प्रवेश नहीं कर पाती थीं। जंगल में एक पगडंडी के बीच एक महाकाय राक्षस अजगर की तरह पड़ा हुआ था। उसके खर्राटे की

भयानक आवाज़ दूर तक सुनाई पड़ रही थी।

नीलकंठ उस राक्षस के सिर तक पहुँचे और उसके सिर पर लात जमाकर कहा, 'उठ!' वह हड़बड़ाकर जाग उठा, 'कौन है?' उसने पूछा। परन्तु नीलकंठ को देखते ही वह उनके चरणों में झुक गया। प्रणाम करके उसने कहा, 'प्रभु! मेरा कल्याण कीजिए। एक ब्राह्मण के शाप से मेरी यह दुर्दशा हुई है।'

उसने अपनी दास्तान कहना प्रारंभ किया, 'मैं तेलंग देश का पवित्र और धर्मिष्ठ राजा था। मेरे राज्य में जयदेव ओर मुकुंददेव नामक ब्राह्मण रहते थे। दोनों विद्वान, समर्थ और सिद्धि-प्राप्त थे। जयदेव की एक वर्ष की पुत्री के साथ मुकुंददेव के तीन वर्ष के पुत्र का विवाह संपन्न हुआ। कुछ वर्ष के बाद मुकुंददेव का पुत्र मोतीझरा रोग से ग्रस्त हो गया। रोग से वह अंधा हो गया। अतः जयदेव ने अपनी पुत्री का विवाह मुकुंददेव के पुत्र से तोड़ दिया। कपड़े-लत्ते और गहने वापस भेज दिये। इससे मुकुंददेव आग बबूला होते हुए मेरे पास आकर न्याय माँगने लगा। मैंने शास्त्रों से पढ़कर न्याय सुनाया कि 'जब कन्या या वर दो में से एक भी व्यक्ति विकलांग हो, तब विवाह तोड़ने के लिए शास्त्रों ने सम्मति दी है।'

यह सुनकर मुकुंददेव क्रोध से आगबबूला हो गया। उसने कहा, 'शास्त्र की अपेक्षा कुलधर्म और रीति-रिवाज महान है। इसलिए आप कन्या के पिता से कहिए कि वह अपनी पुत्री का विवाह मेरे पुत्र के साथ करे।' परन्तु मैंने कहा, 'मैं शास्त्र के विरुद्ध न्याय नहीं दे सकता।'

मुकुंददेव ने क्रोधित होकर मुझे शाप दे दिया, 'जा तू नौ महीनों में राक्षस हो जाएगा।'

यह सुनकर जयदेव ने तुरन्त मेरा पक्ष लेते हुए मुझे वरदान दिया कि 'उसने भले ही तुम्हें अभिशप्त किया हो, परन्तु मेरा वरदान है कि तुम्हें साक्षात् भगवान नारायण मिलेंगे। उनकी सेवा करने का अवसर प्राप्त होगा और तुम्हें भगवान के धाम की प्राप्ति होगी।'

मेरी नौ माह में मृत्यु हो गई। मैं यहाँ राक्षस बनकर रहता हूँ । पशु-पक्षी आदि का आहार कर लेता हूँ। एक बार तो सात दिन तक मुझे अन्न का दाना तक नहीं मिला, तब एक युवान ब्राह्मण पुत्र वन में से गुजर रहा

था। मैंने उसे पकड़ा और उसका आहार करने के लिए जा रहा था कि वह बोला, 'मेरे वृद्ध माता-पिता और बहनों का मैं पालन-पोषण करता हूँ। अपनी बहनों का विवाह निश्चित करने जा रहा हूँ। इसलिए आप मुझे छोड़ दीजिए। यदि आप मुझे नहीं छोडेंगे, तो अजगर की तरह यहाँ जड़ होकर पड़े रहेंगे।'

'मैंने उसकी बात न मानी। मैं उसे खा गया तब से जड़ एवं आलसी अजगर की तरह वन में पड़ा हूँ। आज मेरे सिर को आपके चरणों का स्पर्श हुआ, इसलिए मेरा उद्धार हुआ है।'

इतना कहकर राक्षस नीलकंठ के चरणों में झुक गया। नीलकंठ ने आशीर्वाद देते हुए कहा, 'जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारा अगला जन्म काठियावाड़ में होगा और मेरे आश्रय में तुम्हें भक्ति और मेरा अक्षरधाम प्राप्त होगा।'

आशीर्वाद देकर नीलकंठ आगे बढ़े और राक्षस ने शरीर त्याग दिया।[3]

30. कृतघ्नी सेवकराम

वेंकटाद्रि से चलकर नीलकंठ ने कांचीपुरम् की ओर अपने कदम बढ़ाए। जंगल के रास्ते में उन्हें एक साधु मिला। उसका नाम था सेवकराम। वह श्रीमद् भागवत और संस्कृत का विद्वान था। वह इतना बीमार था कि उसे खूनी दस्त होने लगी, पेट की अत्यधिक पीड़ा और खूनी दस्त के कारण वह अत्यंत कमज़ोर और अशक्त हो गया था। पीड़ा और चिंता से वह लगातार रोता रहता था। उसके पास एक हज़ार रुपये की स्वर्णमुद्राएँ थीं, परन्तु कोई सेवक उसके साथ नहीं था। भागवत के गोपिका गीत की सुन्दर व्याख्या से नीलकंठ, सेवकराम से बहुत प्रभावित हुए। उसे भागवत का विद्वान् जानकर वे, उसकी सेवा में लग गए। नीलकंठ ने उसे आश्वासन दिया और कहा, 'चिंता मत कीजिए। मैं आपकी सेवा करूँगा।' परन्तु सेवकराम तो केवल कथाकार था, साधुता के कोई लक्षण उसमें नहीं थे।

उस जंगल में एक विशाल वट-वृक्ष के नीचे नीलकंठ ने सेवकराम के लिए केले के पत्तों की एक हाथ ऊँची शय्या बिछाई और उस पर सेवकराम को सुलाया। दस्त से सने हुए उसके कपड़े वे प्रतिदिन धोते, औषध देते,

---

3. नीलकंठ के आशीर्वाद के अनुसार, सोरठ के जेतपुर गाँव में काठी बशिया के घर उसका जन्म भगवान के भक्त के रूप में हुआ। उसका नाम रतो रखा गया। लोग उसे रतो बशिया कहते थे। रतो बशिया श्रीजीमहाराज की सेवा तथा भक्ति करता था, लोगों में अपने पूर्व जन्म की बात कहकर निष्ठा करवाता था। भगवान स्वामिनारायण हमेशा रता बशिया के प्रति प्रसन्न रहते थे।

उसकी सेवा करते और उसे जो चाहिए, वह पकाकर खिलाते थे। सेवकराम अपने खाने के लिए नीलकंठ को रुपये देकर नज़दीक के गाँव से चीनी, आटा, घी, अन्न, सब्जी आदि मँगाता था। नीलकंठ भोजन बनाकर सेवकभाव से उसे खिलाते, परन्तु सेवकराम कभी उनको अपने साथ में खाने का निमंत्रण नहीं देता था। अत: वे नज़दीक के गाँव जाकर भिक्षा माँगकर भोजन किया करते थे। कभी-कभी तो भिक्षा में कुछ नहीं मिलता, तब उन्हें उपवास भी करना पड़ता था। इस प्रकार दो-दो दिन तक उपवास रखने पड़ते थे। फिर भी सेवकराम यह नहीं कहता कि ब्रह्मचारी, आज तुम जो सामग्री खरीदकर लाये हो, उसी में से हम दोनों का भोजन बना लो।

नीलकंठ ने भी सेवकराम से ऐसी हमदर्दी की आशा छोड़ दी थी। दो माह तक उसकी अपार सेवा करके उसे स्वस्थ किया। अब दोनों रामेश्वर की ओर आगे बढ़े। रास्ते में सेवकराम, अपना एक मन का भारी सामान नीलकंठ के कंधों पर उठवाता था। हालाँकि वे अपने पास एक रूमाल तक नहीं रखते थे। अब तो सेवकराम प्रतिदिन एक सेर घी पीकर पचा लेता था,

परन्तु नीलकंठ की सुविधा की उसने लेशमात्र परवाह नहीं की। केवल गुलाम की तरह काम करवाता रहा, अतः नीलकंठ ने सोचा कि इसमें न तो भक्ति है और न ही किसीके किए हुए उपकार की कृतज्ञता। इसलिए उसे कृत_घ्नी जानकर उसका साथ छोड़ना ही अच्छा होगा। किए हुए उपकार को जो न समझे वह कृतघ्नी है। जो अच्छे कार्य की कदर न करे वह कृतघ्नी है। जो सेवक को चूस-चूस कर काम में लगा रखे, परन्तु उसके अन्न-वस्त्र का भी ध्यान न रखे वह कृतघ्नी है। कृतघ्नी मनुष्य महापापी माना जाता है। सेवकराम ऐसा ही कृतघ्नी था, इसीलिए नीलकंठ, उससे अलग हो गए।

कांचीपुरम् से चिंगलपेट होते हुए नीलकंठ कावेरी नदी के तट पर आ पहुँचे। स्नान करके कुंभकोणम् में कुंभ के मेले में हज़ारों मुमुक्षुओं को दर्शनदान दिया और कुंभेश्वर महादेव का दर्शन तथा महामघम सरोवर में स्नान करके वे श्रीरंगक्षेत्र आ पहुँचे।

कावेरीगंगा में स्नान करके नीलकंठ श्रीरंग के विशाल मंदिर में पधारे। यहाँ रामानंद स्वामी को श्रीमद् रामानुजाचार्य ने स्वप्न में वैष्णवी दीक्षा दी थी। इस मंदिर में शेषशय्या पर भगवान श्रीरंग की चतुर्भुज विशाल श्याम मूर्ति है। मंदिर के प्रांगण में रामानुजाचार्य की मूर्ति के दर्शन करके नीलकंठ ने सोचा अब तक कई तीर्थों में गया हूँ, वहाँ के पुजारी तथा कई धर्मगुरु भक्ति-मार्ग से भटककर विलासिता में डूब गए हैं। उन्होंने मन ही मन शुद्ध धर्ममार्ग और शुद्ध भक्तिपरंपरा की स्थापना करने का निश्चय दृढ़ किया।

यहाँ से वे मन्नारगुड़ी गए। मन्नारगुड़ी को लोग दक्षिण की अयोध्या और दक्षिण की द्वारिका के रूप में जानते हैं। यहाँ भगवान श्री राजगोपाल के दर्शन कर के नीलकंठ देवीपट्टनम् की ओर चल दिये। देवीपट्टनम् से ही सेतुबंध शुरू हो जाता है। यहाँ पहुँचकर नीलकंठ ने उस पवित्र तीर्थ का दर्शन किया, जहाँ रामचंद्रजी ने नवग्रहों का पूजन किया था। यहाँ भगवान वेंकटेश्वर का मंदिर है। मंदिर में दर्शन करके बालयोगी रामेश्वरम् से प्रस्थान कर गए।

31. भगवानदास को चिह्नों के दर्शन

मार्ग में एक गाँव आया। दोपहर का समय था। नीलकंठ नदी-तट पर एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे।

यहाँ से कुछ दूरी पर एक दूसरा गाँव था। उस गाँव में एक भावसार भगवानदास रहता था। उसकी वृद्धा माँ अति पवित्र और श्रीकृष्ण की परमभक्त थीं। वह प्रतिदिन अपने पुत्र भगवानदास से कहतीं कि जा, प्रभु की खोज करके आ। वह मानती थीं कि खोज करने पर प्रभु अवश्य मिलेंगे और प्रभु मिलें तो हम उन्हें अपने घर बुलाएँगे।

आज न जाने क्यों सुबह से ही माँ को चैन नहीं पड़ रहा था। भगवानदास को कहा, 'तुम घर और खेत का कामकाज करते रहोगे, तो भगवान नहीं मिलेंगे। सब कुछ छोड़कर प्रभु को खोजने निकल जाओ।' परन्तु भगवानदास नहीं माना और वह खेत में चला गया। दोपहर वह भोजन के लिए घर आया। उसकी माँ ने सामान के साथ कुछ भोजन बाँधकर तैयार रखा था। भगवानदास हाथ-पैर धोकर भोजन करने बैठा। माँ ने परोसते हुए फिर से कहा, 'आज अब खेत में जाना ही नहीं है। देखो, यह रहा तुम्हारा सामान और भोजन। यह लो एक सौ सोनामोहरें और निकल जाओ प्रभु की खोज में। हर एक तीर्थ में, नदियों के तट पर, जंगलों और उद्यानों में तथा गुफाओं और खंडहरों में भी देख लेना। हिमालय की तलहटी से लेकर शिखरों तक चप्पा-चप्पा छान मारो। परन्तु भगवान को खोज कर वापस लौटना। बिना उनको लिए घर वापस मत आना। यदि प्रभु को लिए बिना वापस आएगा, तो मैं तुम्हें घर में घुसने नहीं दूँगी।'

यह सब सुनकर भगवानदास का हृदय पिघल गया। उसने कहा, 'ठीक है माँ, आज ही मैं प्रभु की खोज के लिए निकल जाऊँगा, परन्तु प्रभु साक्षात् मिल जाएँगे, तो भी मैं उन्हें पहचानूँगा कैसे?'

माँ ने तुरन्त कहा, 'यह कोई कठिन कार्य नहीं है! प्रभु के दो चरणों में कुल सोलह चिह्न होते हैं। बाएँ चरण में सात और दाएँ चरण में नौ चिह्न होते हैं। दोपहरी के धूप में भी प्रभु की छाया नहीं होती। रात्रि के अंधकार में प्रभु के समीप दीपक जलाएँ और दीपक का तेज उनके शरीर के आरपार निकले तो जानना कि यह साक्षात् भगवान ही हैं। उन्हें छोड़ना मत। प्रार्थना करके, समझा-बुझा कर, अनुरोध करके, प्रसन्न करके अपने घर ले आना।'

यह सब सुनकर भगवानदास की पत्नी बोली, 'आप तो प्रभु को खोजने चल दिए, परन्तु मेरे प्रभु तो आप ही हैं। आपको जीवनभर प्रभु नहीं

मिले, तो मेरा सारा जीवन आपकी प्रतीक्षा में ही बीत जाएगा।'

माँ हँसने लगी और बोलीं, 'अरे पगली, चिंता मत कर। अपनी श्रद्धा होगी, तो पंद्रह दिन में ही प्रभु मिल जाएँगे। भगवान का भजन कर कि तेरा स्वामी और तेरे स्वामी का भी स्वामी भगवान हमें जल्दी मिल जाएँ।'

भगवानदास भी आवेश में आकर बोला, 'हाँ! हाँ! प्रभु अवश्य मिलेंगे। देख, माँ को कितनी श्रद्धा है! उनकी श्रद्धा सच्ची हुई, तेरा पातिव्रत सच्चा हुआ और मेरा भाव सच्चा रहा, तो पंद्रह दिन में ही प्रभु मिल जाएँगे। समझ कि मैं अभी गया और अभी वापस लौटा।' माँ के चरणस्पर्श कर घर से निकल पड़ा।

घर से वह पाँच-छः कोस ही चला होगा कि उसने एक नदी देखी। सायंकाल का समय था। सूर्य ढल रहा था। उसने सोचा, 'इस नदी को पार करके सामनेवाले किनारे पर गाँव में जाकर निवास करूँगा और कल सुबह फिर से आगे बढ़ूँगा।'

वह नाविक को पैसे देकर नाव पर सवार हुआ। तेज़ गति से नाव सामने किनारे की ओर बढ़ चली। कुछ ही देर में वह नदी के किनारे पर पहुँच गया। नाव से उतरकर आठ-दस कदम ही वह चला होगा कि फिर रुक गया। उसने सोचा, 'यहाँ मैं रात कहाँ बिताऊँगा?'

उसी समय किसी ने उसे पुकारा, 'भगवानदास, यहाँ आइए, अरे ओ भगवानदास!' भगवानदास अपना नाम सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। वह

इधर-उधर देखने लगा। उसकी नज़र पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे बालब्रह्मचारी नीलकंठ पर पड़ी। नीलकंठ ने फिर से भगवानदास को नाम लेकर पुकारा। वह आश्चर्य मुग्ध होकर नीलकंठ के पास पहुँचा गया।

'यह ब्रह्मचारी अवश्य ही चमत्कारी होगा। इसे मेरे नाम का कैसे पता चला? मुझे पहचाना कैसे?' वह सोच ही रहा था कि नीलकंठ ने उसे कहा, 'अरे भाई भगवानदास, मैंने तो तुम्हें अपने पैर में चुभे काँटे को निकालने के लिए बुलाया है। काँटा निकाल दो तो बहुत अच्छा। मेरी पीड़ा कम हो जाएगी।'

'ठीक है लाइए आपका पैर।' कहकर भगवानदास, नीलकंठ के समीप बैठ गया। नीलकंठ ने दायाँ पैर फैलाकर भगवानदास की गोद में रखा। कांटा निकालने के लिए जैसे ही भगवानदास ने चरण उठाया, वैसे ही उस कोमल चरण में उसे नौ चिह्न दिखाई दिये! ऊर्ध्वरेखा, अष्टकोण, स्वस्तिक, जामुन, जौ, वज्र, अंकुश, केतू, पद्म इन नौ चिह्नों को देखकर वह खुशी के मारे पागल हो गया। उसने कहा, 'प्रभु! काँटा दूसरे पैर में लगा होगा, इसमें नहीं है।' इससे नीलकंठ ने बायाँ पैर उसकी गोद में रख दिया। भगवानदास ने देखा तो बायें पैर में भी-त्रिकोण, कलश, गोपद, धनुष्य, मीन, अर्धचन्द्र और व्योम - इस तरह सात चिह्न दिखाई दिए।

उसे अपनी माँ के शब्दों का स्मरण हो आया। उसने अस्ताचल की ओर ढल रहे सूर्य की तरफ देखा। फिर पूर्व की ओर दृष्टि डाली। उसे अपनी छाया दीख रही थी परन्तु नीलकंठ की परछाई नहीं दिखाई दी। वह खुशी से उछल पड़ा। नीलकंठ से अनुरोध और प्रार्थना करके तुरंत ही उन्हें नाव में बिठाकर अपने घर ले आया। नीलकंठ और भगवानदास देर रात्रि में घर पर पहुँचे। भगवानदास ने दरवाजा खटखटाया। माँ दरवाजा खोलने आईं। साथ ही भगवानदास की पत्नी हाथ में दीपक लेकर आ पहुँची।

दरवाजा खोलते ही दोनों के आश्चर्य की सीमा न रही। दीपक का प्रकाश नीलकंठ के शरीर से आर-पार निकल रहा था। माँ आनंदविभोर होकर बार-बार नीलकंठ के चरणों में प्रणाम करने लगीं। भगवानदास की पत्नी ने उसी समय रोटी, दूध, मक्खन और मिसरी बनाकर नीलकंठ को भोजन खिलाया।

प्रभात होते ही भगवानदास की माता गाँव में घर-घर जाकर कहने लगीं

कि आइए, मेरे घर साक्षात् भगवान पधारे हैं, सभी दर्शन करने के लिए अवश्य आइए। कौतूहल और उत्सुकता – बस गाँव के लोग भगवानदास के घर आने लगे। नीलकंठ ने सभी को ज्ञान का उपदेश दिया। अंत में चतुर्भुज नारायण के रूप में दर्शन दिए। सभी ग्रामवासी नीलकंठ के चरणों में झुक गए।

नीलकंठ ने भगवानदास के घर दो दिन तक निवास किया। उन्होंने सभी को आशीर्वाद दिया, 'आप तीनों का कुछ ही दिनों में देहान्त होगा और तीनों को उत्तर गुजरात में पुनः जन्म मिलेगा। वहाँ के वड़नगर गाँव में

जुमखराम भावसार के घर आप तीनों का जन्म होगा। वहाँ कुछ वर्षों के बाद मैं आपसे मिलूँगा और तीनों की सेवा स्वीकार करूँगा।' ऐसा आश्वासन देकर प्रभात होने से पहले ही नीलकंठ वहाँ से चल दिये।

नाव में सवार होकर वे हरबोला नामक समुद्र की खाड़ी पार कर के अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए सेतुबंध रामेश्वर आ पहुँचे।

भारत के चार मुख्य तीर्थधामों में से एक महान तीर्थ रामेश्वर है। यहाँ भारत के बारह स्वयंभू ज्योतिर्लिंगों में से एक ज्योतिर्लिंग विराजमान है। यहाँ का मंदिर अति विशाल और प्राचीन है। यहाँ दो माह तक रुककर नीलकंठ प्रतिदिन समुद्र स्नान के बाद रामेश्वर भगवान का दर्शन करते थे। नीलकंठ जहाँ भी जाते थे, यात्री और दर्शनार्थी उनकी मनोहर मूर्ति से आकर्षित होकर अनायास ही उनकी शरण में आकर प्रार्थना करने लगते। नन्हे से नीलकंठ के भक्तिभाव, श्रद्धा और उनकी दिव्य कांति देखकर दर्शनार्थियों की वृत्ति उनमें स्थिर हो जाती थी।

यहाँ से नीलकंठ धनुष्यकोटि पधारे, जहाँ विभीषण की प्रार्थना से भगवान रामचंद्रजी ने धनुष की कोटि से सेतु को तोड़ दिया था। इसी कारण इस स्थान को धनुष्यकोटि के नाम से भी जाना जाता है।

हरबोला खाड़ी उतरकर नीलकंठ दर्भशयन तीर्थ आये। देवीपट्टन से यह तीर्थ आठ मील की दूरी पर है। यहाँ दर्भ की शय्या पर शयन करते हुए द्विभुज नारायण की मूर्ति दर्शन दे रही है। यहाँ से चलकर नीलकंठ सुंदरराज (मदुरा से बारह मील के अंतर पर) आये। लोग सुंदरराज को वृषभाद्रि तीर्थ भी कहते हैं। यह एक पौराणिक स्थान है। सुंदरराज के मंदिर में भगवान नारायण, श्रीदेवी तथा भूदेवी के दर्शन होते हैं। यहाँ मीनाक्षी मंदिर में भी दर्शन करके नीलकंठ भूतपुरी (आधुनिक नाम श्री पेरुम्बुदूर) की ओर चल दिए।

32. शिव-पार्वती ने दर्शन किया

भूतपुरी के मार्ग में एक विकट वन आया। दिन में भी सूर्य की किरणें पृथ्वी पर नहीं पड़ती थीं। घनघोर जँगल में नीलकंठ पैदल और अकेले चले जा रहे थे। चार-चार दिन बीत गए, परन्तु न तो कुछ खाने को मिला, न तो पीने के लिए पानी की एक बूँद! चलते-चलते पाँचवें दिन नीलकंठ भूख-

प्यास की कमजोरी से मूर्च्छित हो गए।

जब वे होश में आये तो उन्होंने कुछ दूरी पर एक कुआँ देखा। नीलकंठ कुएँ के पास पहुँचे तो देखा कि पानी गहरा था, परन्तु निर्मल था। उन्होंने बेल की रस्सी बनाई और कठारी द्वारा पानी बाहर खींचकर कुएँ के जल से स्नान किया। फिर पात्र में शालिग्राम रखकर कठारी के जल से स्नान कराने लगे। जैसे ही उन्होंने शालिग्राम पर पानी चढ़ाया, सारा जल शालिग्राम पी गए! नीलकंठ ने ऐसा चमत्कार देखकर सोचा, 'शालिग्राम को जब इतनी प्यास लगी है, तो भूख भी लगी होगी। परन्तु अन्न कहाँ से लाया जाए?'

स्वयं परमात्मा होने पर भी भक्तों को भक्ति का पाठ सिखाने हेतु नीलकंठ शालिग्राम की भक्ति के कारण व्याकुल हो गए। उसी समय साधु और साध्वी के रूप में एक पुरुष और स्त्री नंदी पर बैठकर वहाँ आये। इस घनघोर जंगल में मनुष्य का आना अति कठिन है परन्तु ये कौन आए हैं? नीलकंठ ने उनसे परिचय पूछा। स्त्री ने अपना परिचय देते हुए कहा, 'ये स्वयं महादेव शिवजी हैं और में सती दुर्गा हूँ। आप इतने दिनों से भूखे हैं, अत: हम आपके लिए सत्तू लेकर आए हैं।'

नीलकंठ ने नमक और सत्तू लेकर शालिग्राम को नैवेद्य चढ़ाया। उचित समय पर शिव-पार्वती की सेवा पाकर नीलकंठ अति प्रसन्न हुए। प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त करके दोनों आकाशमार्ग से अदृश्य हो गए। यहाँ से चलकर नीलकंठ भूतपुरी पहुँचे और वहाँ दर्शन करके कुछ दिनों के बाद तोताद्रि जा पहुँचे।

33. नीलकंठ तोताद्रि में

तोताद्रि में रामानुजाचार्य की व्यासपीठ है। उनका प्रसादीभूत काष्ठासन आज भी विद्यमान है। मंदिर में भगवान विष्णु की मूर्ति शेषफन के नीचे दर्शन दे रही है। यहाँ श्रीमद् रामानुजाचार्य की व्यासपीठ पर मुख्य आचार्य संन्यासी जिअर स्वामी त्रिदंडी उपस्थित थे। नीलकंठ ने उनसे विष्णु के आयुधों की प्रति (छाप) ली। नीलकंठ वर्णी कुछ समय तक उनके आश्रम में रहकर रामानुज संप्रदाय के ग्रंथों की कथा सुनते रहे। रामानुजाचार्य के तत्त्वज्ञान के कुछ सिद्धांत नीलकंठ को रुचिकर लगे। अन्य संप्रदायों की

तुलना में उन्हें रामानुजाचार्य का मत एवं संप्रदाय सरल तथा सुंदर प्रतीत हुआ। परन्तु नीलकंठ ने देखा की यहाँ के त्यागियों में धन और व्यसन का त्याग था, परन्तु स्त्री का त्याग नहीं था। एकबार नीलकंठ ने जिअर स्वामी से इसी विषय पर धीरे से पूछ लिया, 'महात्मन्, त्यागी जानकर मैं आपसे पूछता हूँ कि शास्त्रों में त्यागी को स्त्री-द्रव्य का त्याग रखने का आदेश दिया हैं। क्योंकि स्त्री, द्रव्य और रस ये तीन चीज़ें त्यागी के लिए बंधनरूप हैं। इनसे ब्रह्मादि को भी बंधन हुआ है। इसलिए त्यागी को कौन-सा मार्ग अपनाना चाहिए, इस विषय पर आप ही प्रकाश डालिए।'

परन्तु जियर स्वामी को स्त्री-त्याग की बात ही अकल्प्य लगी। एक छोटे-से बालक से ऐसी बात सुनकर वे क्रोधित हो कर बोले, 'कोई है यहाँ? इस बालक को निकालो यहाँ से। त्यागी के धर्म की बात मुझे बताता है! बालक होकर ब्रह्मांड को ललकार रहा है? इस नादान को यहाँ से निकालो, तभी मैं अन्न-जल ग्रहण करूँगा। मुझे ऐसे शिष्य नहीं चाहिए।'

नीलकंठ ने कहा, 'गुरुदेव, क्रोध करना गुरु या शिष्य का धर्म नहीं है। जिस तरह थोड़ी-सी अग्नि महल को जलाकर राख कर देती है, उसी तरह क्रोध भी मोक्ष को जला देता है।' जियर स्वामी यह सुनकर अधिक क्रोधित हुए। उन्होंने स्वयं ही नीलकंठ को मठ में से निकाल दिया। मठ के सामने एक जगह थी। नीलकंठ ने वहाँ पर रात को निवास किया।

नीलकंठ यहाँ से दक्षिण में कन्याकुमारी आ पहुँचे। इस स्थान को कुमारिकाक्षेत्र भी कहा जाता है। यहाँ बंगाल का समुद्र और हिन्द महासागर का संगम होता है। समुद्र-संगम में स्नान करके नीलकंठ उत्तर की ओर वापस मुड़े। यहाँ लम्बे नारायण ओर पुनः छोटे नारायण के दर्शन किये ओर आगे बढ़े।

34. कन्याकुमारी से उत्तर की ओर

मार्ग में कृतमाला नदी पार कर के नीलकंठ पद्मनाभ (त्रिवेन्द्रम्) आये। यहाँ शेषशय्या पर सो रहे भगवान पद्मनाभ की नाभि में से निकले कमल पर ब्रह्माजी विराजमान हैं। इस विशाल मूर्ति के दर्शन करके नीलंकठ वर्णी आगे बढ़े।

उत्तर की ओर चलकर नीलकंठ जनार्दन तीर्थ आए। यहाँ पर समीप में ही समुद्र है और मीठे पानी के झरने हैं। यहाँ भगवान जनार्दन का विशाल मंदिर है। दर्शन करके नीलकंठ आदिकेशव पहुँचे। यहाँ ताम्रवर्णी नदी के तट पर स्थित मंदिर में उन्होंने भगवान आदिकेशव का दर्शन किया।

कई दिन तक चलते-चलते नीलकंठ श्रीरंगपट्टनम् आए। यहाँ श्रीरंग भगवान का दर्शन करके वे यादवगिरि (मेलूकोटे) गए। यहाँ पर संपत्कुमार का मंदिर है, जिसका पुनरुद्धार श्री रामानुजाचार्य ने कराया था। मंदिर में भगवान नारायण की मूर्ति का दर्शन करके नीलकंठ उत्तर में आगे बढ़े।

कल्याणीगंगा में स्नान करके वे सुंडुर आए। यहाँ पर्वत पर स्वामी कार्तिकेय के मंदिर में उन्होंने दर्शन किया। इस स्थान को लोग पर्वतगिरि के नाम से भी जानते हैं। यहाँ से नीलकंठ ने किष्किंधा प्रांत में प्रवेश किया। तुंगभद्रा नदी में स्नान करके वे माल्यवान पर्वत पर स्थित स्फटिकशिला पधारे। गुफा में स्थित मंदिर में नीलकंठ ने राम-लक्ष्मण-जानकी की मूर्तियों का दर्शन किया।

यहाँ से वे ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे। इस स्थान को दक्षिण का चक्रतीर्थ कहते हैं। यहाँ तुंगभद्रा नदी धनुष्य आकार में बहती है। इसलिए लोग इसे चक्रतीर्थ कहते हैं। नदी अत्यंत गहरी है। नदी में स्नान करके पर्वत पर स्थित श्रीराम मंदिर में नीलकंठ ने दर्शन किया।

किष्किंधा नगरी को पावन करके नीलकंठ शबरीवन से निकलकर तुंगभद्रा नदी पार करके पंपासर आये। यहाँ के आसपास के टीले पर श्रीरंगजी और लक्ष्मीनारायण के मंदिर हैं। यहाँ नीलकंठ ने दर्शन किया।

पंपा सरोवर से आगे महाराष्ट्र में घूमते हुए नीलकंठ पंढरपुर आये। यहाँ चन्द्रभागा नदी के तट पर उन्होंने दो माह तक निवास किया। पंढरपुर में विठोबा के दर्शन कर के नीलकंठ आ.सं. 1855 में पूना शहर में आ पहुँचे। उस समय वहाँ बापू गोखले नामक दीवान, शहर का कार्यभार संभालता था। एक मुमुक्षु हृदयी व्यक्ति था। उसने नीलकंठ की बहुत सेवा की और उनका आश्रय ग्रहण किया। आषाढ़ माह यहीं पर बिताकर श्रावण माह लगते ही नीलकंठ विंध्याचल की ओर चल दिए।

चलते-चलते तापी के तट पर तापी और मौना नदी के संगम पर स्नान

करके सामने के तट पर स्थित बुरहानपुर पधारे। यहाँ से मालेगाँव में एक शिवालय में पाँच दिन रुककर मोसम गंगा में स्नान किया। फिर दंडकारण्य से गुजरते हुए नासिक पधारे। गोदावरी नदी में स्नान करके त्र्यंबकेश्वर महादेव का दर्शन किया और यहाँ से वे गुजरात की ओर चल दिए।

35. नीलकंठ गुजरात में

लगातार पाँच दिनों तक पद-यात्रा के पश्चात् नीलकंठ गुजरात में सूर्यपुर (सूरत) पहुँचे। यहाँ वे निर्वाण अखाड़े में गोड़िया मंदिर में ठहरे। सूरत में किसी ने उनको भोजन के लिए पूछा तक नहीं। वे तीन दिनों तक उपवासी रहे। चौथे दिन एक मालिन ने कुछ फल दिए, उसे स्वीकार कर नीलकंठ ने आहार किया। यहाँ से तापी के तट पर स्थित अश्विनीकुमार तीर्थ में पधारे।

तापी नदी दोनों किनारों पर भरपूर बह रही थी। लोगों के बहुत समझाने के बाद भी नीलकंठ नदी में कूद पड़े और सामने किनारे पर आ पहुँचे। यहाँ से चलकर वे नर्मदा नदी के तट पर भरूच शहर में पहुँचे। यहाँ उन्होंने रात्रिनिवास किया। फिर पिंपली गाँव होते हुए कपिलेश्वर मंदिर में दर्शन करके नर्मदा-स्नान के बाद शुक्लतीर्थ में बावा प्यारा के घाट पर आ पहुँचे।

शुक्लतीर्थ से नीलकंठ अंबाली और अनसूया तीर्थ पधारे। यहाँ अनसूया देवी का मंदिर है। अंबाली की मुमुक्षु राजबाई ने नीलकंठ वर्णी को दूध दिया और प्रार्थना की कि इसी स्थान पर रहिए और इसी तरह प्रतिदिन हमारे घर को अपना सत्संग-लाभ दीजिए। राजबाई का भक्तिभाव देखकर नीलकंठ सात दिन तक अनसूया में रहे। वे प्रतिदिन नर्मदा में स्नान करके अंबाली राजबाई के घर दूध पीने आते थे।

फिर यहाँ से वे शुकेश्वर और व्यासतीर्थ पधारे। इस तरह नर्मदा के तट पर ऋषियों की तपोभूमि को पवित्र करके नीलकंठ आगे चल दिए।

चाणोद तथा कर्नाली के प्राचीन मंदिरों में दर्शन करके नीलकंठ डभोई पधारे। यहाँ वाघनाथ महादेव के मंदिर में उन्होंने रात्रि-निवास किया। फिर वसई होकर वटपत्तन (वटोदर-बड़ौदा) आ पहुँचे।

बड़ौदा शहर के बीच मांडवी के दरवाजे के नीचे नीलकंठ ने आसन ग्रहण किया। संध्या का समय था। धुँधले उजाले में नीलकंठ की प्रतिभा से आकर्षित होकर लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। लोग जिज्ञासापूर्वक पूछताछ करने लगे। इतने में अमीचंद नामक एक व्यापारी अपनी दुकान से निकलकर नीलकंठ के पास आ पहुँचा। उसके हाथ में लालटेन थी। लालटेन के उजाले में उसने नीलकंठ का मुखारविंद देखा तो स्तब्ध रह गया। उसने सोचा कि निश्चित ही यह कोई महापुरुष हैं। उसने नीलकंठ को हाथ जोड़कर भोजन के लिए पूछा। नीलकंठ ने कहा, 'जो भी तैयार हो वह लाइए।' वह दौड़ता हुआ घर गया। पत्नी से पूछा तो खिचड़ी तैयार थी, उसने अपनी पत्नी से बताया कि 'आज तो शहर में एक महान योगी पधारे हैं, उन्हें भोजन कराना है।'

अमीचंद की पत्नी ने भी नीलकंठ के दर्शन किये थे। उनके दर्शनमात्र से उसे शांति की अनुभूति हुई। उसने तुरंत थाली परोस दी। अमीचंद, नीलकंठ के लिए घी और खिचड़ी लेकर उनके पास आ पहुँचा। दो कौर भोजन करके नीलकंठ ने सब कुछ वापस लौटा दिया। अमीचंद प्रसाद लेकर घर आया। उसकी पत्नी ने महिमापूर्वक प्रसाद खाया ही था कि उसके अंतरमन की प्रबल वासना मिट गई और उसे दिव्य शांति का अनुभव हुआ। उसने अपने पति से यह बात कही और दूसरे दिन वर्णी को पकवान बनाकर भोजन कराने के लिए निमंत्रण देने को कहा। सुबह जब अमीचंद, नीलकंठ के पास आया, तो नीलकंठ बिदा लेने की तैयारी कर रहे थे। अमीचंद ने अपने घर पधारने के लिए अति आग्रह किया, परन्तु नीलकंठ ने कहा, 'तुम्हारी सेवा मैं भविष्य में लूँगा।'

अमीचंद ने प्रणाम करते हुए कहा, 'परन्तु मेरी देह का क्या भरोसा?' नीलकंठ ने कहा, 'तुम्हारी देह तब तक मैं सँभालूँगा।' और हँसते हुए कहा, 'तुम्हारे घर में लक्ष्मीनारायण की मूर्ति भूमि में गाड़कर रखी गई है, उस मूर्ति को मैं अपने साधुओं को भेजकर मँगवा लूँगा ।'[4]

---

4. नीलकंठ ने अपनी भविष्यवाणी के अनुसार ये मूर्तियाँ वरताल में मंदिर बना तब संतों को भेजकर मँगाई थीं और वरताल के मध्यखंड में उनकी स्थापना की थी।

अमीचंद यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। अपने घर में लक्ष्मीनारायण की मूर्ति उसके पिता ने भूगर्भ में रखवा दी थी। यह बात कोई और जानता ही नहीं था। वह नीलकंठ के चरणों में झुक गया। नीलकंठ आशीर्वाद देकर आगे चल दिए।

मार्ग में मही नदी में स्नान करके वे नावली गाँव पहुँचे। यहाँ भोजन लेकर उन्होंने लालदास का कल्याण किया, 'तुम्हारे घर सुपुत्र का जन्म होगा।'[5] ऐसे आशीर्वाद देकर, नीलकंठ बामणगाँव होकर डाकोर पधारे। यहाँ श्री रणछोडराय के दर्शन करके वरताल आ पहुँचे। यहाँ जोबनपगी ने नीलकंठ को महान योगी समझकर भोजन का प्रबंध किया। नीलकंठ ने ठाकोरजी को अर्पण करके भोजन अंगीकार किया। जोबनपगी के आग्रह करने पर नीलकंठ ने दुबारा वरताल आने का वचन दिया।

36. बोचासण में नीलकंठ

वरताल से चलकर वर्णी बोचासण आये। गाँव के बाहर तालाब के किनारे एक वटवृक्ष के नीचे निवास किया।

नीलकंठ वर्णी को यह गाँव अति सुंदर लगा। गाँव में पाटीदारों के मंडल आज इकट्ठे हुए थे। वर्णी ने सोचा कि गाँव में कोई उत्सव होगा। इतने में गाँव की स्त्रियाँ तालाब में स्नान करने आईं। नीलकंठ वहाँ से उठकर रामजी मंदिर में चले गए। मंदिर के पुजारी नरसिंहदास ने नीलकंठ का स्वागत किया।

आज गाँव के प्रमुख कानदास पटेल ने ब्राह्मण-भोज रखा था। गाँव के लोगों ने नीलकंठ का दर्शन किया तो सभी अत्यंत प्रभावित हुए। गाँव के पाटीदार वेरीभाई ने कानदास को नीलकंठ के आगमन की खबर दी। कानदास ने पुत्र काशीदास को नीलकंठ को निमंत्रित करने के लिए भेजा।

नीलकंठ वर्णी बाएँ पैर पर दायाँ पैर रखकर ध्यानमग्न बैठे थे। नीलकंठ को देखते ही काशीदास आश्चर्य-चकित रह गए। नीलकंठ के शरीर के चारों ओर प्रकाश-सा फैला हुआ था। कुछ देर के बाद नीलकंठ ने जब आँखें खोलीं तो सामने काशीदास को देखा। काशीदास ने नीलकंठ के

5. यह वही सुपुत्र जो 'कशियाभाई' नाम से संप्रदाय में प्रसिद्ध हुए।

चरणस्पर्श करके प्रार्थना की, 'हे प्रभु! हे बालब्रह्मचारी! आप मेरे घर भोजन करने पधारिए।'

काशीदास का भावपूर्ण आग्रह देखकर नीलकंठ कानदास पटेल के घर पधारे। वे आँगन में बैठ गए। नीलकंठ के दर्शन से काशीदास की वृद्ध माता नानीबाई अत्यंत प्रसन्न हुईं। अचानक नीलकंठ ने कहा, 'माँ! लड्डू दीजिए।'

नानीबाई भावविभोर होकर रसोई में लड्डू लेने गईं। किन्तु ब्राह्मणों ने कहा कि अभी नैवेद्य नहीं चढ़ाया। नानीबाई वापस आईं तब नीलकंठ ने कहा, 'माँ, दूध और भात दो।' परन्तु घर में बिलकुल ही दूध नहीं था।

दोपहर का समय था। कानदास ने सोचा, 'अभी दोपहर के समय दूध कहाँ से लाऊँ? सायंकाल हो तो भैंस भी दूध दे सकती है, परन्तु अभी भैंस भी दूध नहीं देगी।' वे बड़े ही धर्मसंकट में पड़ गए।

परन्तु नानीबाई को नीलकंठ के शब्दों पर विश्वास था। वह हाथ में पात्र लेकर भैंस के पास गईं तो उनके आश्चर्य की सीमा न थी। भैंस के आँचलों से दूध स्वतः आ रहा था। कुछ ही पलों में दूध से पात्र भर गया। फिर नीलकंठ वर्णी को दूध, भात और शक्कर का भोजन परोसा। नीलकंठ तृप्त हुए।

नानीबाई ने कहा, 'महाराज! अब हमारे ही घर रहिए।'

नीलकंठ ने कहा, 'माँ! मैं यहाँ फिर आऊँगा, एक नहीं, अनेकबार आऊँगा। आपके यहाँ ही घर बनाकर रहूँगा। मुझे अभी तो अनेक कार्य संपन्न करने बाक़ी हैं। इसलिए अब मुझे जाने की अनुमति दीजिए। आपके पुत्र और आपका परिवार बड़ा भाग्यशाली हैं। हमारा आशीर्वाद हैं कि सारा परिवार भक्त बनकर मेरी भक्ति करेगा।' फिर नीलकंठ ने रामजी मंदिर में पधारकर राम, लक्ष्मण और सीताजी की संध्या आरती का लाभ लिया। तथा पुजारी की ओर देखकर कहा, 'ये मूर्तियाँ भविष्य में निर्माण होने वाले भव्य मंदिर में बिराजमान होगीं।'[6]

---

6. नीलकंठ की प्रसादीभूत इन मूर्तियों को बोचासण में श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण मंदिर के मध्यखंड में अक्षरपुरुषोत्तम की मूर्तियाँ के साथ, इच्छाराम एवं रघुवीरजी महाराज के नये नामकरण के साथ वि.सं. १९६३ (सन् 1907) में प्रतिष्ठित की गई थीं। जो कि फिलहाल अन्यत्र दर्शनार्थ रखी गई हैं।

गाँव के लोग नीलकंठ के दिव्य प्रभाव से आकर्षित होकर बोले, 'ब्रह्मचारीजी! अब यहीं पर निवास कीजिए।'

तभी पुजारी बोल उठा, 'यह लड़का यहाँ रहकर क्या करेगा? यहाँ उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।'

नीलकंठ ने मुस्कुराकर कहा, 'ठीक कहते हैं वे, मैं इतनी छोटी जगह में निवास नहीं कर सकता। मेरे लिए तो यहाँ विशाल धाम बनेगा।'[7]

दूसरे दिन नीलकंठ यहाँ से चल दिए।

37. चर्मवारि नहीं पीना चाहिए

बोचासण से चलकर छोटे-बड़े तीर्थों और गाँवों में अनेक मुमुक्षुओं का कल्याण करते हुए नीलकंठ बुधेज पहुँचे। यहाँ से वे गोराड गाँव के पास तालाब के किनारे पधारे। यहाँ आकर एक घने पीपल के नीचे नीलकंठ ने आसन ग्रहण किया सामने ही एक बाड़ी थी। वहाँ कोली जाति का बीजल नामक एक किसान बैलों की सहायता से रहट चला रहा था। कुएँ में पानी बहुत ही नीचे और कम था। बैल के कंधे पर रहट खींचते हुए छाले पड़ गए थे। नीलकंठ दयाभाव के साथ बाड़ी में जा पहुँचे।

उन्होंने पूछा, 'पीने के लिए पानी मिलेगा?' बीजल ने कहा, 'महाराज! अभी रहट के द्वारा पानी निकाला जाएगा। तब पी लेना।'

नीलकंठ ने कहा, 'तुम्हारे रहट में काष्ठ के पात्रों की जगह पशुओं के चमड़े से बनी हुए थैली लगाई गई है। इसलिए ऐसे पानी को मैं चर्मवारि (चमड़े के कारण अपवित्र हुआ पानी) समझता हूँ। इसलिए मुझे यह पानी नहीं पीना है।'

बीजल ने सोचा कि यह महात्मा किसी अन्य जमात से आया लगता है। उसने कहा, 'महात्माजी! पीना हो तो पी लीजिए, कुएँ में तो अठारह हाथ गहरा पानी है। नदी, तालाब, कुएँ - सभी जगह पानी की कमी है।'

---

7. नीलकंठ की भविष्यवाणी के अनुसार बोचासण में ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज ने तीन शिखरों का भव्य मंदिर निर्माण करके मध्यखंड में स्वर्ण से जड़ित सिंहासन में भगवान स्वामिनारायण की उनके उत्तम सेवक गुणातीतानंद स्वामी के साथ मूर्तिप्रतिष्ठा की है।

बीजल को नीलकंठ के दर्शन होने से उनके प्रति उसके मन में भक्तिभाव जाग्रत हुआ था, इसलिए उसने कहा, 'महाराज! मेरे पास रस्सी नहीं है, नहीं तो आपको पानी खींचकर देता।'

नीलकंठ ने कहा, 'कोई बात नहीं, मुझे रस्से की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।' इतना कहकर वे कुएँ के पास आये। उन्होंने अपना कमंडलु कुएँ पर रखा ही था कि कुछ ही पलों में अठारह हाथ गहरा पानी उपर आने लगा। देखते ही देखते कुँआ पानी से छलछला उठा। वर्णी ने कमंडलु भर लिया।

बीजल आश्चर्यचकित होकर नीलकंठ के चरणों में गिर गया और प्रार्थना करने लगा कि यह पानी सदा इतना ही रहे। उसने सोचा कि यह महापुरुष यदि इस गाँव में रुके तो गाँव का भाग्य बदल जाएगा। इसलिए बीजल गाँव में जाकर सभी को कहने लगा, 'मेरी बाड़ी में एक महात्मा आये हुए हैं और कुएँ का पानी उनके कारण ऊपर आ गया है। हम सब मिलकर उन्हें यहाँ रोक लें।' परन्तु नीलकंठ को जल्दी थी।

बिजल की बातें सुनकर सभी आश्चर्यचकित होकर बाड़ी पर आये। परन्तु नीलकंठ तो दूर तक निकल चुके थे। सभी निराश हो गए। इतने में

गड़रिया जाति का एक व्यक्ति आता हुआ दिखाई दिया। सभी ने उससे नीलकंठ के बारे में पूछा तो उसने कहा, 'हाँ ! हाँ! एक तपस्वी ज़मीन से दो हाथ ऊपर हवा में चलते हुए बिजली की गति से जा रहे हैं। आप उन तक नहीं पहुँच पाएंगे।' सभी ने सोचा कि अवश्य ही कोई आलौकिक बालयोगी हमारे गाँव में पधारे थे।

38. मारने का क्या अधिकार?

नीलकंठ खंभात की खाड़ी के किनारे धनकातीर्थ में आये। यहाँ स्नान पर्व पर एकत्रित विशाल भीड़ की तरफ कृपादृष्टि की। उत्तर में रामसर तालाब के समीप एक कुएँ से उन्होंने पानी लिया और ठाकुरजी को चढ़ा कर पीया। फिर शिकोतर जाने के लिए निकल पड़े। वहाँ पहुँचने पर नीलकंठ को एक भयानक आकृतिवाला व्यक्ति मिला। उन्होंने उसका वेश देखकर पूछा, 'भाई, तुम कौन हो और तुम्हारी इस झोली में क्या रखा है?'

उसने कहा, 'मैं जाति से कोली हूँ। लाखा मेरा नाम है और इस झोली में मैंने मछलियाँ पकड़ी हैं।' यह सुनकर वर्णी के शरीर मे झुरझुरी दौड़ गई। हृदय की वेदना से वे बोल उठे, 'भाई, कोली जाति में तो अनेक भक्त हुए हैं। इतनी मछलियाँ तुमने क्यों मारीं? ऐसे पापकर्म से तुम छुटकारा कैसे पाओगे?'

लाखा के हृदय को वर्णी के एक-एक शब्द तीर की तरह भेद रहे थे। वर्णी ने कहा, 'भाई! क्या भगवान तुम्हें पूछने वाला नहीं हैं कि तुमने इतनी मछलियाँ क्यों मारीं? इतने जीवों की हत्या तुमने क्यों की? जीवित को मार डालने का तुम्हें क्या अधिकार है?'

लाखा का अंत:करण यह सुनकर घायल हो गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। उसने हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभु, इस दु:खकारक अकाल में अनाज मिलता ही नहीं है। इसलिए यह व्यवसाय करना पड़ रहा है। मैं भी समझता हूँ कि यह पाप है, परन्तु लाचारी के कारण मुझे हिंसा करनी पड़ती है।'

वर्णी ने कहा, 'लाखा! क्या बनिया-ब्राह्मण को अन्न नहीं मिलता? क्या वे भूखे मर रहे हैं? तुम भी उनकी तरह भोजन में अनाज लेने का निर्णय करोगे तो भगवान अवश्य ही तुम्हें भूखा नहीं रखेंगे। तुम्हारे घर में अकाल नहीं दिखाई देगा।'

इतना कहते ही नीलकंठ ने नदी के तट पर जाकर लाखा की झोली को स्पर्श किया उसी पल सभी मछलियाँ जीवित होकर नदी में कूद पडीं! लाखा का हृदय हलका हो गया। उसने सोचा कि ये साक्षात् भगवान ही हैं।

वह वर्णी के चरणों में गिर गया और बोला, 'प्रभु! आज की रात वड़गाम में ठहर जाइए। संध्याकाल हो चुका है और आगे का रास्ता भी वीरान है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर मही और साबरमती का संगम होने के कारण बाँसभर पानी रहता है इसलिए वहाँ तो ठहरना असंभव है और सामने नदी के पार झाड़ियों में तो बाघ-चीते का भय भी है।' वर्णी सब कुछ सुन रहे थे।

उन्होंने कहा, 'लाखा! यदि रास्ता अधिक विकट हो, नदी में पानी भी गहरा हो, बाघ-चीते का भय हो, तो वहाँ जाना मुझे अधिक अच्छा लगता है। मेरे कदम जहाँ पड़ते हैं, भय वहाँ से भाग जाता है।'

इतना कहकर वर्णी ने लाखा को ज्ञान का उपदेश दिया। सूर्यास्त हो चुका था। चारों ओर सन्नाटा फैला हुआ था। नदियों की कल-कल ध्वनि अब बदल रही थीं। ज्वार आने के कारण संगम अधिक भयानक लगता था। लाखा फिर गिड़गिड़ाया, 'महाराज! यह संगम पार करना बहुत कठिन है। अच्छे-अच्छे तैराक भयभीत हो जाएँ, ऐसी भँवरियाँ चलती हैं। सुबह ज्वार उतरते ही चले जाना। कल तो मैं भी आपको धोलेरा तक किसी दूसरे मार्ग से छोड़ने आऊँगा।'

परन्तु वर्णी ने उसकी बात न सुनी और कहा, 'मैं सामने के किनारे पहुँच कर अपनी मृगछाला हिलाऊँगा तब तुम जानना कि मैं पार उतर गया हूँ।' मानवता का मार्ग दिखानेवाले और मछलियों को पुनर्जीवन देनेवाले नीलकंठ के प्रति लाखा के मन में अपार स्नेह जाग उठा था।

लाखा को आशीर्वाद देकर तीव्रगति से नीलकंठ ने पानी पर पैर रखा। लाखा आश्चर्यचकित होकर देखता रह गया कि नीलकंठ पानी पर चलते जा रहे थे। अँधेरे में भी प्रकाश की लकीरें उसे अंत तक दिखाई देती रहीं। सामने पार से उसने मृगछाला हिलती हुई देखी। लाखा समझ गया कि वह दिव्यपुरुष उसे छोड़कर पार चले गए। उदास हृदय से वह वापस गाँव लौटा। सभी से नीलकंठ की महिमा कहने लगा। गाँव में सभी को लगा कि अवश्य ही कोई महान विभूति इस गाँव को पवित्र करके चले गए। नीलकंठ ने

वागड़ आकर राणा बावड़ोज कुंभार के घर रात्रि को निवास किया। उसने नीलकंठ को सोने के लिए दरी बिछा दी, परन्तु नीलकंठ अपने नियम के अनुसार मिट्टी के ढेर पर सो गए।

39. स्वरूप की पहचान

एक के बाद एक गाँव, शहर और तीर्थों को पार करते हुए गुजरात के पश्चिम तट पर स्थित समुद्रतट की ओर नीलकंठ आगे बढ़ रहे थे। जहाँ-जहाँ से वे गुज़रते थे, वहाँ लोग उनके दिव्य स्वरूप को देखकर विस्मित हो जाते थे। लोग आश्चर्यचकित उन्हें पहचाने या न पहचाने, परन्तु नीलकंठ स्वयं अपने स्वरूप की पहचान दे देते थे और कभी-कभी भविष्य की बाते भी बताया करते थे।

चलते-चलते नीलकंठ वर्णी भावनगर जिले के कुकड गाँव में पधारे। यहाँ वे राजपूतों के मुहल्ले से गुज़रे। उस समय दरबार भगवानसिंहजी और उनके सेवक खोजा जीवा ठक्कर नुक्कड़ पर बैठे थे। वर्णीराज कुछ देर वहाँ खड़े रहे। नीलकंठ को देखकर उन्हें लगा कि कोई भिक्षुक ब्रह्मचारी होगा। उन्होंने मज़ाक में ही पूछा, 'महाराज! कौन से गाँव में रहते हो? क्या नाम है? क्या जाति है?'

नीलकंठ ने अपनी अलमस्ताई में उत्तर दिया, 'मेरा देश है-अनिर्देश, जाति है ब्रह्म और मेरे नाम तो अनंत हैं। मैं भी अपने नाम गिन नहीं पाता।' इतना कहकर वे चल दिये।

सेवक चतुर था। उसने सोचा कि यह कोई महान योगी होगा । नहीं तो इस प्रकार वार्ता नहीं करता। उसने राजा से कहा, 'राजन् ! मानिए या न मानिए वह कोई महान योगी होंगे। हमने उनका आदर नहीं किया, अत: बड़ा ही अनर्थ कर दिया।'

राजा मुमुक्षु था। उसने सेवक से कहा, 'जीवा, तुम्हारी बात सत्य हो सकती हैं। हमने भूल तो कर दी परन्तु योगी अभी दूर नहीं पहुँचे होंगे। उन्हें वापस बुला लेते हैं।' दोनों तुरन्त ही चल दिये।

नीलकंठ प्रभु नदीतट पर आम के वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बिराजमान थे। उनकी दृष्टि स्थिर थी। पास ही तुंबीपात्र पड़ा था । ध्यान में

मग्न वर्णी को भगवानसिंह का स्पर्श हुआ कि वे तुरन्त ही जाग उठे। भगवानसिंह तथा जीवा ठक्कर हाथ जोड़े उनके समीप बैठे थे। भगवानसिंह ने कहा, 'योगीजी! हमारे आँगन से आप बिना भोजन के बिदा होंगे, वह हमारे लिए शोभास्पद नहीं है। आपकी वाणी हम अज्ञानी समझ नहीं पाए, इसलिए आप दरबार में पधारिए और भोजन ग्रहण कीजिए।'

वर्णी ने कहा, 'दरबार, आप सीधा-सामग्री ले आइए। मैं स्वयं पकाकर भोजन कर लूँगा।' दरबार ने वैसा ही किया। वर्णी ने भोजन लिया और प्रसाद राजा तथा सेवक को दिया। दोनों के मन में अपार आनंद का अनुभव हुआ। फिर यहाँ आने का वचन देकर नीलकंठ आगे चल दिये।

अब वे दिहोर आए। गाँव के चौक में कुछ वृद्ध गप्पें हाँक रहे थे। उन लोगों को नीलकंठ ने उपदेश दिया। वहाँ एक भावसार की पत्नी और उसके पुत्र मूलजी ने नीलकंठ को भोजन देकर सेवा की।

यहाँ से चलकर वर्णीराज लाकड़ीया गाँव आए। यहाँ खोजा प्रेमजी ठक्कर ने एक खास आसन बनाया था। यह आसन किसी महान फकीर, योगी या संत को देने के लिए रखा था। नीलकंठ ने स्मित करते हुए कहा, 'कोटि ब्रह्मांड में मेरे जैसा योगी नहीं मिलेगा।' फिर आसन को पवित्र किया और हँसते हुए गोपनाथ की ओर निकल पड़े। वहाँ भोलेनाथ शंभु को जल चढ़ाकर पीपरला गाँव पधारे। एक ब्राह्मणी ने प्रेमपूर्वक ताज़ा रोट बनाकर, घी डालकर नीलकंठ को भिक्षा में अर्पण किया। उसका भाव देखकर नीलकंठ ने रोट की पपड़ी खोली, उसी पल ब्राह्मणी को उसमें ब्रह्मांड का दृश्य दिखाई दिया। उस ब्राह्मणी ने विस्मित होकर नीलकंठ की दिव्यता को पहचान लिया।

गोपनाथ से नीलकंठ भूमि की ओर दृष्टि गड़ाए वेगपूर्वक चले जा रहे थे। सामने से आ रही एक स्त्री नीलकंठ की तेज़ गति को देखकर स्थिर रह गई। वर्णी में उसे विभूति स्वरूप के दर्शन हुए। एकाएक उसने पुकार लगाई, 'अरे महाराज! रुकिए!' वर्णी आवाज़ सुनकर रुक गए। मुड़कर पीछे देखा तब तक वह स्त्री वर्णी की ओर दौड़कर आई। उसके हाथों में एक पात्र दूध से छलक रहा था।

वर्णी ने पूछा, 'इसमें क्या है?'

'दूध है महाराज, आप पी लीजिए।' उसने पात्र वर्णी की ओर बढ़ाया

वर्णी ने अपने कमंडलु में दूध छानकर ले लिया और पीने लगे। फिर उससे पूछा, 'बहन, तुम कौन हो?'

स्त्री ने बड़े भोलेभाव से कहा, 'मैं पीथलपर गाँव में रहती हूँ। जाति से खोजा हूँ। मेरा नाम जानबाई है। गाय का दूध प्रतिदिन महादेव पर चढ़ाने नियमपूर्वक जाती हूँ। रास्ते में यदि कोई मिले, तो यह दूध पिला देने का मेरा नित्यक्रम है।'

नीलकंठ ने कहा, 'जानबाई ! आज तुमने जो दूध दिया है, उस दूध को साक्षात् महादेव ने अंगीकार किया है।' ऐसा कहकर वर्णी ने उस पर दिव्य दृष्टि डाली। स्त्री के अंतरमन में परम शांति का अनुभव हुआ।

आगे चल कर मालण नदी में स्नान करके नीलकंठ महुवा शहर में प्रविष्ट हुए। रास्ते में पीतांबर सेठ ने नीलकंठ को फलाहार कराया। वर्णी ने आशीर्वाद दिये। श्रावक सेठ पीतांबर सत्संगी हुए। गाँव में लक्ष्मीनारायण के मंदिर के प्रांगण में हनुमानजी की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई है। नीलकंठ ने यहाँ इमली के वृक्ष के नीचे विश्राम किया। एक दिन बाबा ने, दूसरे दिन बनिया ने तथा तीसरे दिन बाबा फुलवण ने भोजन का प्रबंध किया। यहाँ नीलकंठ तलगाजरड़ा गाँव से बहती नदी में स्नान-ध्यान करके तुलसीश्याम होकर गुप्तप्रयाग पधारे।

गुप्तप्रयाग में नीलकंठ रायण के नीचे आसन लगा कर बैठे। यहाँ प्रतिदिन कुंड में स्नान करके नीलकंठ तीर्थवासियों को उपदेश देते थे। उस समय वड़नगर के नागर भना पाठक हमेशा नीलकंठ के लिए भोजन आदि का प्रबंध करते थे। एक दिन भना पाठक ने नीलकंठ से पूछा, 'यतिराज, आपका क्या नाम है?'

तब नीलकंठ भविष्यवाणी करते हुए बोले, 'मेरा नाम सहजानंद है। भविष्य में इसी नाम से लोग मुझे पहचानेंगे।' भना पाठक नीलकंठ के भविष्यकथन से आनंदित हो गए। साथ ही शेषशायी मंदिर के ब्रह्मचारी नृसिंहानंदजी भी वर्णी को भोजन कराते। उसकी प्रार्थना सुनकर नीलकंठ ने आशीर्वाद दिए कि कुंड में बारहों मास पानी रहेगा। यहाँ नीलकंठ ने डेढ़ माह तक निवास किया।

यहाँ से डोलाहा गाँव में गड़रिया जाति के मुहल्ले में ठहरे। गड़रिया ने

सीधा दिया परन्तु नीलकंठ ने केवल गाय का दूध माँगकर पीया। रात्रि के समय गड़रिये के गुरुभजन के लिए आए थे।

देर रात्रि होने पर सभी सो गए। वर्णी और महंतजी दोनों पास-पास ही सो रहे थे। महंतजी अपने बिछौने में करवट बदलते हुए अपनी आदत के अनुसार बोलते रहते थे 'हे राम !' यह सुनकर नीलकंठ भी सहज ही उसके उत्तर में कह देते, 'हाँ...।' जब इसी प्रकार तीन-चार बार हुआ, तो महंतजी अपने बिस्तर से उठकर खड़े हो गए और बोले, 'तुम 'हाँ' 'हाँ' क्यों करते हो? तुम राम हो क्या?'

वर्णी हँस दिए। उन्होंने कहा, 'हाँ, जो राम होगा वही तो 'हाँ' कहेगा।'

इतना कहकर नीलकंठ ने उसे रामचन्द्र भगवान के रूप में दर्शन दिया। महंतजी इस अप्रत्याशित अनुभव से दिग्मूढ़ रह गए। नीलकंठ के दिव्य स्वरूप की उन्हें पहचान हुई । सुबह होते ही नीलकंठ यहाँ से चले और दोपहर तक लोढ़वा आ पहुँचे।

40. लखु चारण के घर नीलकंठ

लोढ़वा गाँव में लखुबाई नामक एक चारण भक्त रहती थीं। लखुबाई समाधिनिष्ठ और निरावरण दृष्टिवाली भक्त थीं। लोढ़वा गाँव में बैठे-बैठे उसे सौ-सौ कोस दूर की घटनाएँ दिखाई देती थीं। सौ कोस दूर तक की आवाज़ सुनाई देती। उसके लिए दीवार का आवरण भी नहीं था। वह कमरों में से बिना द्वार आरपार निकल जाती थी। घंटों तक आँखें बंद करके वह ध्यान में बैठती थीं। लखुबाई आत्मानंद स्वामी की शिष्या थीं। उसके साथ विठ्ठलानंद और बालानंद नामक दो ब्रह्मचारी रहते थे। लखुबाई के घर भैंसों का बाड़ा था। इसलिए दूध-दही की कमी कभी नहीं होती थी।

नीलकंठ लखुबाई के घर आ पहुँचे। लखुबाई गाँव में आने वाले प्रत्येक साधु-संत को सदाव्रत देतीं तथा अच्छे-अच्छे साधु-संन्यासियों की परीक्षा ले लेती थी। लखु नीलकंठ को सनकादिक ऋषि के समान समझने लगीं, और भक्तिभाव से नीलकंठ को तीन माह अपने निवास पर रखा। लखु रोज सुबह-शाम नीलकंठ को ताज़ा दूध और मक्खन-मिसरी देतीं। एक दिन नीलकंठ ने लखुबाई से पूछा, 'माँ ! आपने भक्ति-दीक्षा किससे ली है?'

लखुबाई ने अपनी बात कहनी प्रारंभ की, 'मेरे गुरु आत्मानंद स्वामी थे। उनका मूल स्थान गिरनार के पास त्रंबा गाँव था। आत्मानंद स्वामी वचनसिद्ध और सच्चे सद्‌गुरु थे। साक्षात् जीवनमुक्त थे। वे अद्वैत के उपासक थे इसलिए 'ब्रह्म निराकार है' ऐसी उनकी मान्यता थी। हम भी उनके वचन के अनुसार भगवान को निराकार मानते हैं। हमारे गाँव में आत्मानंद स्वामी ने अनेक चमत्कार दिखाये थे। इन विठ्ठलानंद और बालानंद को भी मेरे गुरु ने संन्यस्त दीक्षा दी है। उनकी आज्ञा से ही ये मेरे घर रहते हैं। हम तो आत्मानंद स्वामी को ही ईश्वर के समान मानते हैं।' इतना कहकर उन्होंने आत्मानंदजी के शिष्य स्वामी रामानंदजी का चरित्र कहना भी प्रारंभ कर दिया।

41. रामानंद स्वामी का जीवन चरित्र

अयोध्या में अजयप्रसाद नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सरमनि था। संवत् 1795 की जन्माष्टमी के दिन उसके घर एक पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का नाम राम शर्मा रखा गया। राम शर्मा को बचपन से ही भक्तिभाव में रुचि थी। वह अत्यंत बुद्धिशाली था। बारह वर्ष की आयु तक उसने घर में रहकर ही शास्त्रों का अध्ययन किया। फिर घर छोड़कर उच्च शिक्षा के लिए तथा सच्चे गुरु की खोज के लिए वे तीर्थयात्रा करते रहे। वे जब सौराष्ट्र में तलाजा गाँव आए तो यहाँ काशीराम शास्त्री के घर रहकर ग्रंथों का अध्ययन प्रारंभ किया। अध्ययन के बाद वे द्वारिका की यात्रा पर चल दिए। यहाँ पर एक संन्यासी ने राम शर्मा से कहा, 'तुम सिद्ध गुरु को खोजते रहे हो तो गिरनार की तलहटी में त्रंबा गाँव में जा कर आत्मानंद स्वामी से मिलो। वे बड़े सिद्ध एवं चमत्कारी संत हैं।' राम शर्मा कुछ दिनों के बाद त्रंबा आ पहुँचे।

उन्होंने आत्मानंद स्वामी को अपने गुरुपद पर स्थापित किया। आत्मानंद स्वामी ने दीक्षा देकर उनका नाम रामानंद स्वामी रखा। प्रतिदिन गुरु-शिष्य के बीच भगवान के स्वरूप के विषय में चर्चाएँ होती थीं। गुरु आत्मानंद स्वामी भगवान को निर्गुण-निराकार कहते थे। जब कि रामानंदजी भगवान के स्वरूप को साकार मानते थे।

रामानंद स्वामी को कृष्णभक्ति में अत्यंत रुचि थी। उनकी इच्छा थी कि श्रीकृष्ण भगवान का साक्षात् दर्शन करना चाहिए। इसलिए वे एक दिन

आत्मानंद स्वामी का त्याग करके दक्षिण भारत की ओर चल दिये। वहाँ रामानुजाचार्य के गद्दी स्थान श्रीरंगक्षेत्र में उन्होंने श्रीकृष्ण का भजन और रामानुज की भक्ति की। इससे भगवान श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर रामानंद स्वामी को स्वप्न में दर्शन दिया और रामानुजाचार्य ने स्वप्न में ही उन्हें वैष्णवी दीक्षा दी। हाथ और छाती पर निशानी दी। वैष्णवधर्म का प्रवर्तन करने के लिए तथा साकार भगवान की भक्ति का प्रसार करने के लिए आदेश दिया।

स्वप्न से अंतर्धान होते समय श्रीकष्ण भगवान ने उन्हें दर्शन देकर

कहा, 'पुरुषोत्तम नारायण पृथ्वी पर साक्षात् प्रकट होंगे, वे अनंत जीवों का उद्धार करेंगे और तुम्हें भी उनके दर्शन का सौभाग्य मिलेगा।' यह सुनकर रामानंद स्वामी अत्यंत प्रसन्न हुए।

फिर वे सारे भारत में सभी स्थानों पर विचरण करने लगे तथा श्रीकृष्ण की भक्ति का उपदेश देने लगे। अंत में वे पुनः काठियावाड़ पधारे और गुरु आत्मानंद स्वामी से मिलकर पुनः भगवत् स्वरूप की चर्चा की। आत्मानंद स्वामी ने अपने शिष्य से पराजय स्वीकार किया और अद्वैत मत का त्याग करके मूर्तिपूजा एवं भक्तिमार्ग को अपना लिया। उन्होंने अपने सभी शिष्यों को रामानंदजी के आश्रित होने के लिए आदेश दिया कि 'अब तुम सब रामानंद स्वामी की आज्ञा का पालन करना।'

कुछ समय के बाद आत्मानंद स्वामी का देहोत्सर्ग हुआ। रामानंद स्वामी ने मांगरोल नगर के निकट लोज गाँव में आश्रम की स्थापना की। उन्होंने गाँव-गाँव तक श्रीकृष्ण का उपदेश पहुँचाना प्रारंभ कर दिया। वे जहाँ भी जाते वहाँ कहा करते थे कि 'मैं तो डुगडुगी बजाने वाला हूँ। परन्तु नटनागर परमात्मा तो अब आनेवाले हैं।'

लखुबाई इन बातों क्शे कहते हुए गद्गद हो गईं। उसने कहा, 'ब्रह्मचारी! हमें तो अपने गुरु आत्मानंद स्वामी के अलावा किसी में भी श्रद्धा नहीं है। अन्य शिष्य भले ही रामानंद स्वामी के पास गए परन्तु हम विठ्ठलानंद और बालानंद तो आज भी भगवान को निर्गुण-निराकार ही मानते हैं। हम रामानंद स्वामी का उपदेश कभी नहीं सुनते।'

नीलकंठ ने इन तीनों की गलत मान्यता को बदलने के लिए अद्वैत मत के दोष दिखाकर भक्तिमार्ग में निष्ठा जाग्रत की। उनको समझाया कि भगवान सदा साकार हैं तथा उनकी पूजाभक्ति करना एवं महिमा समझना मुमुक्षु के लिए अनिवार्य साधना हैं। इस प्रकार तीन माह निकल गए। नीलकंठ ने सोचा, 'इस लखुबाई ने मेरी बहुत सेवा की है। अब उसे अध्यात्म का सत्य समझ में आ चुका है, इसलिए मुझे बिदा होना चाहिए।'

एक दिन नीलकंठ ने उसे वरदान माँगने के लिए कहा। लखुबाई बोलीं, 'ब्रह्मचारी महाराज! आप तो भगवान हैं। इसलिए मेरा पुत्र वीर, साठ भैंसें और मेरी बाड़ी अमर रहें, ऐसे आशीर्वाद दीजिए।'

वर्णी ऐसी प्रार्थना सुनकर मुस्कुराने लगे। उन्होंने सोचा, 'लखुबाई को माँगना नहीं आया। उसने केवल मायिक चीज़ों के लिए प्रार्थना की है। परन्तु मैं इसे सर्वश्रेष्ठ वस्तु दे दूँ।' ऐसा सोचकर नीलकंठ ने कहा, 'लखुबाई, मैं तुम्हें अपना अक्षरधाम दे रहा हूँ।' इतना कहकर नीलकंठ प्रभासपाटण की ओर चल दिए।

42. नरसिंह मेहता को दर्शन

प्रभासपाटण और भालका तीर्थ होकर नीलकंठ जूनागढ़ की ओर चल दिये। गिरनार पर्वत की प्रदक्षिणा करके उन्होंने चढ़ाई शुरु की। वहाँ दामोदर कुंड में नीलकंठ ने स्नान किया। मंदिर में पुजारी को वर्णी ने दामोदर के रूप में दर्शन देकर फिर गौमुखी गंगा आ पहुँचे। यहाँ के संन्यासियों ने नीलकंठ से कहा, 'यह स्थान हमारा है। हम तुम्हें यहाँ स्नान नहीं करने देंगे।'

उसी समय नीलकंठ ने उन्हें भगवान वामनजी के रूप में दर्शन दिया। साधु अपनी भूल समझ गए। उन्होंने नीलकंठ को स्नान कराया। चंदन की अर्चा की तथा फूलमाला पहनाकर भोजन का प्रबंध भी कर दिया। दत्तात्रेय

के मंदिर में एक तपस्वी को नीलकंठ ने दत्तात्रेय के रूप में दर्शन दिया।

गिरनार उतरकर उन्होंने जूनागढ़ शहर में प्रवेश किया। यहाँ हाटकेश्वर महादेव के मंदिर में वे विश्राम कर रहे थे कि उसी समय एक नागर मुमुक्षु वहाँ से गुजरा। उसने नीलकंठ को देखा तो सोचने लगा, 'यह तपस्वी बहुत विद्वान दिख रहे हैं। मेरे प्रश्नों का समाधान उन्हीं से मिल सकता है।' वह नीलकंठ के पास आ पहुँचा और प्रणाम करते हुए एक के बाद एक दस प्रश्न पूछ लिए। नीलकंठ ने सभी प्रश्नों के उत्तर मात्र दो वाक्यों में दे दिये। नागर आश्चर्यचकित रह गया। नीलकंठ के चरणों में झुककर उसने प्रार्थना की, 'ब्रह्मचारीजी, आप मेरे घर को पावन कीजिए।' नीलकंठ ने उस नागर के घर एक रात्रि निवास किया। उस रात्रि को नागर ने नीलकंठ के स्वरूप में भगवान शंकर का दर्शन किया।

प्रात:काल नीलकंठ जूनागढ़ से बिदा होकर भूतनाथ महादेव तथा खेंगार बावड़ी को पावन करके वंथली गाँव आ पहुँचे। यहाँ सूर्यकुंड में स्नान करके पीपलाणा पधारे। पीपलाणा में एक पवित्र ब्राह्मण नरसिंह मेहता रहते थे। नीलकंठ उनके घर पधारे, उस समय वे शालिग्राम की पूजा कर रहे थे। उनका पुत्र कल्याणजी आँगन में बैठा था। नीलकंठ ने कल्याणजी से भिक्षा माँगी तब कल्याणजी ने कहा, 'अभी भोजन तैयार नहीं है। यदि आप दो घड़ी रुकें तो भिक्षा मिल सकती है।'

नीलकंठ ने कहा, 'इतनी देर तक तो मैं भोजन के लिए नहीं रुक सकता, मुझे आगे की यात्रा तय करनी है, इसलिए जो भी तैयार हो, ले आओ। यदि अन्न तैयार नहीं है तो कोई बात नहीं, मैं चलता हूँ।' इतना कहकर नीलकंठ शीघ्रता से गाँव के बाहर चल दिये। जाते-जाते उनकी दृष्टि नरसिंह मेहता के शालिग्राम की ओर गई। उसी पल चमत्कार हो गया! पूजा में बैठे हुए नरसिंह मेहता के शालिग्राम से प्रकाश निकलने लगा।

नरसिंह मेहता उठकर फौरन बाहर आए। उन्होंने नीलकंठ को नहीं देखा तो कल्याणजी से पूछने लगे, 'तुम जिससे बात कर रहे थे, वे तपस्वी कहाँ गए?'

'वे तो चले गए।' कल्याणजी ने कहा, 'वे अभी-अभी अन्न माँग रहे थे। मैंने कहा कि कुछ देर रुकिए तो भोजन करा दूँगा। परन्तु वे नहीं रुके।'

यह सुनकर नरसिंह मेहता व्याकुल हो गए। उन्होंने तुरंत कल्याणजी को नीलकंठ के पीछे जाने का आदेश दिया, 'तुम अभी उठो और उस ब्रह्मचारी को घर ले आओ।' कल्याणजी ने उसी दिशा में दौड़े जिस दिशा में नीलकंठ गए थे। कुछ दूरी पर नीलकंठ को देखते ही दंडवत् प्रणाम करके कल्याणजी ने घर वापस लौटने का निमंत्रण दिया। नीलकंठ के आगमन से नरसिंह मेहता प्रसन्न हो गए। भैंस दोहकर उन्होंने नीलकंठ को ज्वार का धान और दूध का भोजन कराया। उस समय नीलकंठ ने उनको चतुर्भुज नारायण के रूप में दर्शन दिया। नरसिंह मेहता धन्य हो गए।

उनको अपने गुरु रामानंद स्वामी के शब्दों का स्मरण हो आया कि 'मैं तो उद्धवजी का अवतार हूँ। साक्षात् पुरुषोत्तम प्रभु तो अब अवतरित होंगे और तुम्हारी सेवा अंगीकार करेंगे।' साथ ही, उनको गिरनार में सुनी हुई आकाशवाणी का स्मरण हुआ कि 'साक्षात् भगवान तुम्हारे घर आएँगे और तुम्हें चतुर्भुज नारायण के रूप में दर्शन देंगे।'

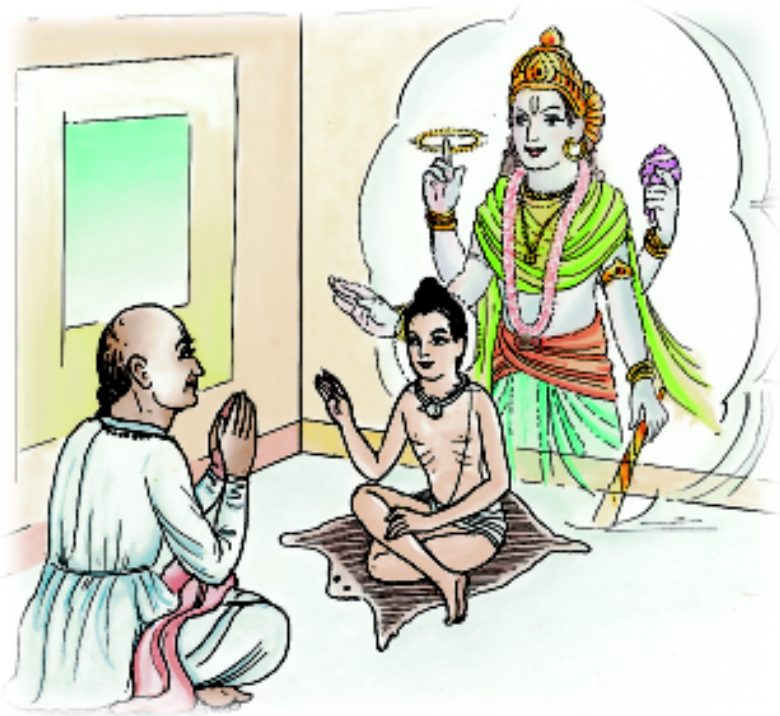

नरसिंह मेहता नीलकंठ को परमात्मा जानकर गद्‌गद हो गए। उन्होंने नीलकंठ से सारी बात कही। यह सुनकर नीलकंठ ने पूछा, 'तुम्हें आकाशवाणी कैसे सुनाई दी थी?'

नरसिंह मेहता विस्तार पूर्वक बताने लगे, 'मुझे बचपन से ही भगवान से मिलने की चाह थी। मैं प्रतिदिन पूजा-पाठ तथा दान-यज्ञ करता था, परन्तु मुझे प्रभु का अनुग्रह नहीं मिला। मैं गृहत्याग कर गिरनार में बहुत सालों तक घूमता रहा। कितने ही योगी-यति मिलते रहे, परन्तु अंतरमन में शांति नहीं हुई। अत: ऊब कर एक दिन आ त्महत्या करने पेड़ पर चढ़ा, तभी मुझे तीन बार आकाशवाणी सुनाई दी, 'तुम चिंता क्यों करते हो? आत्महत्या मत करो, क्योंकि साक्षात् भगवान तुम्हारे घर पधारेंगे, और चतुर्भुज नारायण के रूप में दर्शन देंगे।' उसी दिन से मैं आज तक आपके दर्शन की प्रतीक्षा करता रहा हूँ। आज आपके दर्शन से मेरा उद्धार हो गया है।'

नरसिंह मेहता नीलकंठ को बिदा देने के लिए गाँव के बाहर स्थित वटवृक्ष तक गए। उन्होंने एक आश्चर्य देखा कि दसों दिशाओं से एक-एक अवतार आए और नीलकंठ में लीन हो गए। सर्वत्र तेज प्रसारित हो गया। नीलकंठ अदृश्य हो गए। नरसिंह मेहता आनंदित होकर घर लौट गए।

नीलकंठ अब मढ़डा गाँव में जेठा मेर के घर पधारे। उसके निष्कामी आचरण से प्रसन्न होकर, दिव्य दर्शन देकर नीलकंठ माँगरोल पधारे। शहर के बाहर पश्चिम दिशा में स्थित डोसाबावड़ी के बाहर उनका निवास था। गाँव के वणिक सेठ गोवर्धनभाई ने नीलकंठ को गुड़पपड़ी का भोजन खिलाया।

माँगरोल से बिदा लेकर नीलकंठ आ.सं. 1856 (कार्तिक के अनुसार सं. 1855)में श्रावण माह की कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन प्रभात के समय लोज गाँव आ पहुँचे।

43. नीलकंठ लोज में

छोटे-से लोजपुर गाँव में चरण रखते ही नीलकंठ का मन प्रसन्न हो गया। गाँव के बाहर उत्तर दिशा में स्थित बावड़ी पर नीलकंठ एक वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ मुद्रा में बिराजमान हुए। सुबह के हल्के-से उजाले में वर्षा से भीगी हुई हरी-भरी धरती सुरम्य दिख रही थी। गाँव की स्त्रियाँ बावड़ी में

पानी भरने आ रही थीं।

पनिहारियों की नज़र एकाएक नीलकंठ पर पड़ी और सभी स्तब्ध होकर प्रभु के दर्शन में निमग्न हो गई। कितनी कृश काया, फिर भी कितना तेजस्वी मुखारविंद! वे आपस में कहने लगीं, 'निश्चित ही यह कोई राजकुमार लगता है, अथवा बडे घर का बेटा कुटुंब कलह के कारण ही घर छोड़कर निकल गया होगा। अन्यथा ऐसी सुकुमार अवस्था में इतना वैराग्य और ऐसी तपश्चर्या करने यह क्यों निकल गया होगा? नीलकंठ के वैराग्य से सभी द्रवीभूत होकर नीलकंठ के समीप आकर खड़ी हो गईं। नीलकंठ ध्यानमग्न ही रहे।

कुछ पलों में गाँव के आश्रम के एक साधु पानी भरने बावड़ी के पास आ पहुँचे। उनका मन भी नीलकंठ के प्रति आकृष्ट हो गया। वे प्रतीक्षा करने लगे कि बालब्रह्मचारी आँखें खोलें तो उनके आशीर्वाद लेकर चलूँ। काफ़ी समय बीत गया किन्तु नीलकंठ तो ध्यानमग्न ही रहे। अतः साधु बावड़ी में पानी भरने चले गए।

पानी लेकर वे पुनः नीलकंठ के समीप खड़े हो गए। पानी की बड़ी गागर हाथ में लिए वे नीलकंठ की आँखें खुलने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

जब नीलकंठ ने आँखें खोलीं, तो मानों करुणा का अथाह सागर उमड़ पड़ा। वर्णी की प्रतिभा और तेजस्विता से साधु दिग्मूढ़ हो गए। उन्होंने गागर भूमि पर रखकर प्रणाम करके नीलकंठ से पूछा, 'ब्रह्मचारीजी! आप कहाँ से पधारे हैं? आपका शुभ नाम क्या है? आपके माता-पिता कौन हैं? आपने वैराग्य क्यों लिया? आपके गुरु कौन हैं? यह सब जानने की मेरी अभिलाषा है।'

नीलकंठ ने मार्मिक हास्य करके कहा, 'साधुराम, त्यागी की जाति-पाँति, देश, स्नेहीजन नहीं होते। जो भवबंधन से हमें मुक्त करते हैं, उन्हीं को हम माता, पिता और गुरु समझते हैं। मैं ऐसे ही गुरु की खोज में निकला हूँ।'

फिर नीलकंठ ने पूछा, 'साधुराम! आपका शुभ नाम क्या है? आप किसके शिष्य हैं? आपका संप्रदाय कौन सा है?'

'मेरा नाम सुखानंद है, महाराज।' संत ने कहा, 'मेरे गुरु रामानंद स्वामी हैं। रामानुज मेरे दीक्षा के आचार्य हैं। इसी गाँव में रामानंद स्वामी का आश्रम है और पचास संत इस आश्रम में रहते हैं।' नीलकंठ ने रामानंद

स्वामी के बारे में उत्कंठा से पूछा।

सुखानंदजी ने कहा, 'रामानंद स्वामी अभी कच्छ गए हुए हैं परन्तु आप हमारे आश्रम में आइए। रामानंद स्वामी के मुख्य शिष्य मुक्तानंद स्वामी यहाँ विराजमान हैं। आपके समान विभूति का दर्शन आश्रम के सभी संतों को प्राप्त होगा। मुक्तानंद स्वामी भी अति प्रसन्न होंगे।' नीलकंठ को सुखानंदजी की नम्रता और विवेक बड़े अच्छे लगे। फिर भी गाँव में जाना उन्हें पसंद नहीं था।

उन्होंने कहा, 'साधुराम! मैं गाँव में अधिक नहीं जाता।'

सुखानंदजी ने पुनः कहा, 'प्रभु! आप नहीं आएँगे तो मेरे गुरु आपको लेने यहाँ आएँगे।' नीलकंठ को ऐसा अविवेक पसंद नहीं था। वे आश्रम जाने के लिए सहमत हो गए।

आश्रम में प्रवेश करते ही मुक्तानंद स्वामी का दर्शन हुआ। सुखानंदजी ने बड़े भावपूर्वक वर्णी का परिचय दिया। मुक्तानंद स्वामी वर्णी के दर्शन से अत्यंत अभिभूत थे। जब सुखानंदजी ने नीलकंठ के लिए आसन बिछाया, तब नीलकंठ ने कहा, 'साधुराम, सारी पृथ्वी ही मेरा आसन है। आसन

बिछाकर इस देह का सम्मान क्यों करना चाहते हो?'

आश्रम के अन्य साधुओं को जैसे-जैसे खबर मिलती गई, सभी मुक्तानंद स्वामी और वर्णी के पास आने लगे। हर कोई नीलकंठ की दिव्य प्रतिभा से आनंदित हो रहे थे। वर्णी ने भी प्रेमपूर्वक पृथ्वी का स्पर्श करके सभी को नमस्कार किया और कहा, 'आश्रम को देखकर मेरे अंतरमन में अत्यंत शांति हुई है। मैं जहाँ भी गया हूँ, मैंने अध्यात्मज्ञान का सिद्धान्त जानने हेतु पाँच प्रश्न पूछे थे, परन्तु कहीं भी शुद्धज्ञान की समझ नहीं देखी।'

यह सुनकर मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'योगीराज, आप जो भी प्रश्न पूछेंगे, उसका उत्तर मैं अपने गुरु रामानंद स्वामी की कृपा से तथा उनके दिये गए ज्ञान के आधार पर देने का प्रयास करूँगा।'

वर्णी ने नम्रतापूर्वक अपने पाँच प्रश्नों को पूछा, 'स्वामी! जीव क्या है? ईश्वर क्या है? माया क्या है? ब्रह्म और परब्रह्म के स्वरूप कैसे हैं?'

मुक्तानंद स्वामी भी ये प्रश्न सुनकर विचारों की गहराई में खो गए। कुछ देर के बाद उन्होंने कहा, 'वर्णीराज! आपके प्रश्न अत्यंत गहन हैं। इतनी-सी आयु में आप इस तरह के प्रश्न पूछ सकते हैं, यही आपकी महानता है।'

इतना कहकर मुक्तानंदजी ने नम्रतापूर्वक सभी प्रश्नों के उचित उत्तर दिये। नीलकंठ ने संतुष्ट होकर कहा, 'मैंने इन प्रश्नों के उत्तर अनेक संत-संन्यासियों से प्राप्त करना चाहा था, परन्तु सभी निष्फल गए थे। आपको गुरु रामानंद स्वामी की कृपा से ही यह ज्ञान प्राप्त हुआ है।'

अब उन्होंने सोच लिया कि इसी आश्रम में रुककर रामानंद स्वामी का दर्शन करना चाहिए। अथवा वे जहाँ भी हों, वहाँ जाकर उनकी भेंट करनी चाहिए। परन्तु मुक्तानंद स्वामी ने उनको आश्वासन दिया कि 'रामानंद स्वामी कुछ महीनों में यहाँ अवश्य पधारेंगे।' नीलकंठ ने यह सुनकर इसी आश्रम में निवास करने का निश्चय कर लिया।

इस प्रकार सात वर्ष, एक माह और ग्यारह दिन तक कठिन वन विचरण की आज समाप्ति हुई। नीलकंठ आज तक कहीं नहीं रुके थे। परन्तु आज गुजरात और भारतवर्ष के इतिहास का मानो स्वर्णदिन था। वर्णीराज की अविरत यात्रा की पूर्णाहुति का यह ऐतिहासिक दिन था । एक प्रकार से गुजरात के अध्यात्म-इतिहास की करवट बदलने का अमूल्य क्षण था!

44. वन विचरण का संकेत

आ.सं. 1849 की (कार्तिक के अनुसार सं. 1848) आषाढ शुक्ला दसमी से आ.सं. 1856 (कार्तिक के अनुसार सं. 1855) श्रावण कृष्णा षष्ठी तक नीलकंठ ने सात वर्ष, एक माह और ग्यारह दिन तक निरंतर पदयात्रा की। अंत में लोज गाँव में आकर वनविचरण की पूर्णाहुति की।

इस अवधि में उन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट सहन किए। कड़ाके की ठंड हो या चिलमिलाती धूप हो, मूशलाधार वर्षा हो, या प्रचंड हिमशिलाओं का प्रपात हो, सबकुछ उन्होंने सहन कर लिया। निर्जल उपवासों के कारण उनका रक्त सूख गया। ऐसा उग्र उनका तप था कि बड़े-बड़े ऋषि आश्चर्यचकित थे। वे ज़हरीले जीवजन्तु और भयंकर हिंसक प्राणियों के बीच रहे। जंगल और झाड़ियाँ, पर्वत और खाइयाँ, सरोवर और तीव्र गति से बहती नदियाँ, पगडंडियाँ और काँटों से भरे रास्ते उनके इरादे नहीं बदले! खुले शरीर, नंगे पैर, बिना किसी वाहन के नीलकंठ बस घूमते ही रहे। क्यों?

क्योंकि उनके मन में अनंत जीवों के कल्याण की अभिलाषा थी। अनंत जीवजंतुओं और पशुपक्षियों को उन्होंने मोक्षगति प्रदान की। अनेक मुमुक्षुओं को दर्शन दिया। अनंत जन्मों से प्रभुदर्शन के प्यासे भक्तों को दर्शन देकर उनकी साधना को सार्थक किया। दंभी साधुओं और वैरागी साधुओं के दंभ दूर किये। दृष्टि अथवा संकल्पमात्र से उन्होंने असुरों का संहार किया और भगवान के भक्तों के लिए भक्ति का मार्ग निर्विघ्न बना दिया। कई वन-उपवनों में अनंतकाल से तप कर रहे ऋषिमुनियों को दिव्य गति देकर उनकी तपश्चर्या का फल दिया। हज़ारों लोगों को अपना आश्रित बनाया।

नीलकंठ ने भारत की समग्र भूमि को नंगे पाँव घूमकर पवित्र की। नदी, सरोवर, सागर, कुआँ-बावड़ी आदि पवित्र किये। तीर्थों को सजीवन किया। देवमंदिरों को अपने प्रभाव से पवित्र किया। आश्रमों और मठों के साधु-संन्यासियों को अपने विशुद्ध आचरण से प्रेरणा दी। त्यागी होने की इच्छा रखनेवाले मुमुक्षुओं को परमहंस बनाने के लिए काठियावाड़ की ओर मोड़ा।

नीलकंठ जहाँ भी गए, सर्वत्र अहिंसा और ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। स्त्री और धन के त्याग की महिमा कही। गृहस्थ, साधु और राजा को उनके

नीति-धर्म समझाये। उन्होंने तीर्थों, मंदिरों, साधु-संतों के जीवन और संप्रदायों के तत्त्वज्ञान एवं रीतिरिवाजों का सूक्ष्म अध्ययन किया। उनमें से ग्रहण करने योग्य सारतत्त्व स्मृति में रख लिया।

नीलकंठ जिन-जिन संप्रदायों में गए, वहाँ वे खोजते रहे कि यहाँ स्त्री और धन के संपूर्ण त्यागी है या नहीं। अथवा यहाँ भगवान का सदा साकार स्वरूप स्वीकार करते है या नहीं। भगवान की भक्तिपूर्ण उपासना हैं या नहीं, वे जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म के संबंध में प्रश्न पूछते थे, क्योंकि उन्हें शुद्ध तत्त्वज्ञान स्वीकार करनेवाले सम्प्रदाय की तलाश थी। नीलकंठ इसी कारण तीर्थों, आश्रमों तथा विभिन्न संप्रदायों में इसी विषय पर प्रश्न पूछते रहते थे। लोज गाँव के आश्रम में रामानंद स्वामी के शिष्यों के द्वारा उनको जो उत्तर प्राप्त हुए, उन्होंने इसी स्थान को अपने निवास के लिए श्रेष्ठ समझा। यहाँ स्त्री, धन के त्यागी संत थे, भगवान के साकार स्वरूप की उपासना थी, तथा उपरोक्त पाँच भेदों का तत्त्वज्ञान भी मान्य था।

आर्षदृष्टा नीलकंठ जानते थे कि मुझे जिस भूमि पर कार्य करना है उस भूमि पर रामानंद स्वामी ने कार्यक्षेत्र तैयार किया है। श्रीकृष्ण की चरणरज से पवित्र सौराष्ट्र की भूमि पर अनंत भक्त मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। साथ-साथ अनादि अक्षरब्रह्म की भी यह जन्मभूमि है। इस प्रकार पुरुषोत्तम नारायण नीलकंठ ने इसी भूमि से अपने कार्य-विस्तार का निर्णय ले लिया।

45. दो स्वरूप में दर्शन

तीन दिन से नीलकंठ वर्णी रामानंद स्वामी के आश्रम में निवास कर रहे थे। जन्माष्टमी का उत्सव पूरे गाँव में धूम-धाम से मनाया जा रहा था। मुक्तानंद स्वामी तथा संतों ने सारा आश्रम ध्वजा-पताका से सजाया था। वंदनवारों से आश्रम का प्रत्येक द्वार सुशोभित था। द्वार पर केले के स्तंभ दृश्यमान हो रहे थे। प्रातःकाल से ही प्रभु के मंगलनाम की धून वातावरण को प्रफुल्लित कर रही थी। आज सभी संतों और हरिभक्तों ने निर्जल उपवास किया था।

संध्या होते ही आश्रम में हरिभक्तों की भीड़ जमा होने लगी। सभी के हाथों में ठाकुरजी के लिए छोटी-बड़ी भेंट दिख रही थी। धुन-भजन के

बाद मुक्तानंद स्वामी ने भगवत् कथा का प्रारंभ किया। देखते ही देखते रात्रि के बारह बज गए। सजाए हुए सुंदर पालने में बालकृष्ण की प्रतिमा को बिराजमान किया गया। मुक्तानंद स्वामी बड़े भक्तिभाव से जन्मोत्सव की आरती करने लगे। उसी समय पालने में बिराजित लालजी की मूर्ति के स्थान

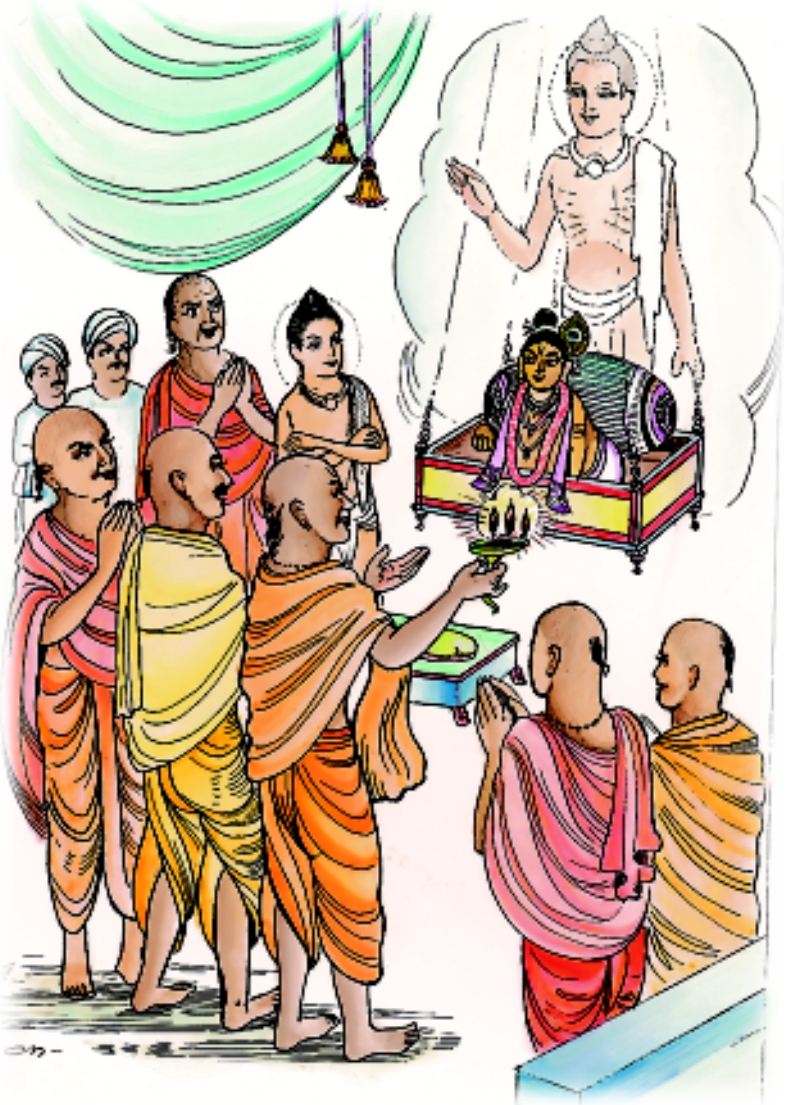

पर सभी को नीलकंठ के दर्शन होने लगे। सभी के आश्चर्य की सीमा न रही। सभी के अंतर्मन में प्रतीति होने लगी कि नीलकंठ कोई सामान्य बालयोगी नहीं है। बल्कि स्वयं पुरुषोत्तम नारायण हैं। आधे घंटे तक हर कोई इस दर्शन से कृतार्थ होता रहा। अंत में पंचाजीरी का प्रसाद लेकर सभी भक्त नीलकंठ को प्रणाम करके अपने-अपने घर गए।

46. स्त्री-पुरुषों की सभा अलग-अलग की

आश्रम के समीप ही जीवराज सेठ का विशाल घर था। घर के प्रांगण में मुक्तानंद स्वामी प्रतिदिन कथा किया करते थे। एक दिन संतों के साथ वर्णी भी कथा में बिराजमान हुए। खचाखच भरे हुए स्त्री-पुरुषों की भीड़ में नीलकंठ ने देखा कि स्त्री और पुरुष दोनों की बैठकों का प्रबंध मर्यादा के अनुसार नहीं किया गया है। इस प्रकार कथा करने से तो स्त्री और पुरुष दोनों की संयमदृष्टि में विघ्न हो सकता है, तथा संतों के ब्रह्मचर्यव्रत का भी भंग हो सकता है। अतः नीलकंठ तुरंत सभास्थल को छोड़कर जाने लगे। जब मुक्तानंद स्वामी ने वजह पूछी, तो नीलकंठ ने कारण बताया कि स्त्री और पुरुषों का इस प्रकार मर्यादाहीन बैठना मुझे रुचिकर नहीं लगता। इसलिए मैं सभास्थल का त्याग कर रहा हूँ। हालाँकि मुक्तानंद स्वामी को यह ठीक नहीं लगा। उन्होंने सोचा कि वर्णी शायद त्याग के अतिरेक में ऐसा कदम उठा रहे हैं, परन्तु कथा समाप्ति होते ही उन्हें समझाएँगे। मुक्तानंद स्वामी ने अपना प्रवचन जारी रखा, परन्तु नीलकंठ के बिदा होते ही मानो सभा निष्प्राण हो गई। सभी शून्यमनस्क होकर बैठे रहे। उनके चित्त की एकाग्रता टूट गई थी। मुक्तानंद स्वामी को कभी ऐसा अनुभव नहीं हुआ था। वे आश्चर्यचकित हो गए।

दूसरे दिन जब कथा प्रारंभ हुई, नीलकंठ ने संतों की ओर देखकर कहा, 'संतों! हरिभक्तों! आप सभी मंदिर में आइए। मैं आप सब को वहाँ कथा सुनाऊँगा। क्योंकि इस तरह स्त्रियों के साथ-साथ बैठकर कथा श्रवण करना हमारा धर्म नहीं है।' इतना कहकर वे मंदिर की ओर जाने लगे।

धीरे-धीरे सभी संत, हरिभक्त उठकर नीलकंठ के पीछे चल दिए। मुक्तानंद स्वामी की सभा में केवल स्त्रियाँ ही बचीं। अब मुक्तानंद स्वामी ने भी नीलकंठ का अभिप्राय समझकर ग्रंथ बाँध लिया और एकत्र हुई स्त्रियों

से कहा, 'माताओं! अब अंतिम राम राम! आज से स्त्री तथा पुरुषों की सभाएँ अलग-अलग होंगी।'

मुक्तानंद स्वामी, नीलकंठ की अपेक्षा आयु में तो बड़े थे ही, परन्तु रामानंद स्वामी के पट्ट शिष्य भी थे, फिर भी नीलकंठ के इस सुझाव तथा सुधार को उन्होंने प्रसन्न हृदय से स्वीकार किया। ब्रह्मचर्यधर्म की स्थापना का वर्णी का यह प्रथम सोपान था।

47. गोखा बंद किया

इतने में एक अन्य घटना घटी। रामानंद स्वामी के आश्रम से सटा हुआ एक नाई का घर था। दोनों के बीच की एक दीवाल में एक सुराख बनी हुई

थी। जब साधुओं को चूल्हा जलाने के लिए अग्नि की आवश्यकता पड़ती या नाई की पत्नी को अग्नि की आवश्यकता होती, तो इस गोखे में से एक-दूसरे से अंगार लेते या देते थे। नीलकंठ ने दीवाल का यह गोखा देखा तो उन्होंने मुक्तानंद स्वामी को बुलाया और कहा, 'स्वामी! इस दीवाल में यह जो गोखा है, वह एक दिन साधु के धर्म में छिद्र जरूर करेगा। साधुओं को इस तरह स्त्रियों से व्यवहार करना उचित नहीं है।' इतना कहकर मुक्तानंद स्वामी के आदेश की प्रतीक्षा किये बिना स्वयं ईंट और चूना मँगा लिया तथा उसी समय वह गोखा अपने ही हाथों से बंद कर दिया। सभी संत देखते ही रह गए। मुक्तानंदजी ने भी सोचा कि वर्णी जो कहते हैं, वह बिलकुल उचित ही है।

इस प्रकार नीलकंठ ने धर्म का शुद्धीकरण करना प्रारंभ कर दिया था।

48. खंभा पकड़कर रहना

वर्णी का दिन आश्रम में सेवा और भक्ति में बीता करता था, परन्तु उनके मन में गुरु रामानंद स्वामी के दर्शन की अत्यंत आतुरता थी। एक दिन मांगरोल के भक्त आणंदजीभाई संघेड़िया (खरादी) भूज से मुक्तानंद स्वामी का दर्शन करने लोज आये। नीलकंठ का दर्शन करके, आश्रम की गतिविधियाँ देखकर वे रामानंद स्वामी के पास पहुँचे। रामानंद स्वामी उत्सुकता पूर्वक लोज की हर खबर पूछने लगे। फिर मयाराम भट्ट से कहा, 'लोज जाकर नीलकंठ से कहना कि यदि सत्संग में रहना हो, तो खंभा पकड़कर रहना पड़ेगा।'

जब मयाराम भट्ट और आणंदजीभाई यह संदेश लेकर लोज आये। नीलकंठ ने जैसे ही गुरुआज्ञा सुनी, तुरन्त ही उन्होंने उठकर आश्रम के एक खंभे को अपनी बाँहों में भर लिया। मुक्तानंद स्वामी और सभी संत आज्ञा पालन की नीलकंठ की इतनी तत्परता देखकर आश्चर्यचकित हो गए। परन्तु मयाराम भट्ट ने कहा, 'ब्रह्मचारीजी! खंभे को पकड़कर रहने का अर्थ यह नहीं कि इस तरह काष्ट का स्तंभ पकड़कर बैठे रहना। परन्तु सत्संग के स्तंभ के समान मुक्तानंद स्वामी की आज्ञा का पालन करना, यही गुरु के आदेश का रहस्य है।'

नीलकंठ ने उसी पल काष्ट का स्तंभ छोड़ दिया और मुक्तानंद स्वामी को प्रणाम करने गए। मुक्तानंद स्वामी ने उन्हें गले लगा लिया।

अब आश्रम के सभी साधु अपने-अपने नियमपालन में जागरूक रहने लगे। मुक्तानंद स्वामी ने वर्णी को दो उपवस्त्र और एक अलफी देकर कहा, 'अब इस प्रकार के वस्त्र धारण करना। आज से आपका नाम सरजूदास रखा गया है क्योंकि आप सरजू नदी के प्रदेश से आए हैं!'

नीलकंठ यह सुनकर मुस्कुराने लगे उन्होंने कहा, 'स्वामी ! मैं तो ब्रह्मपथ का यात्री हूँ। सरयूप्रदेश या अन्य प्रदेश मैं भूल गया हूँ।'

नीलकंठ ने सरजूदास नाम धारण करके आश्रम की सेवा में अपने आप को समर्पित कर दिया। वे सभी संतों को योगासन सिखाने लगे। सुबह जल्दी जागकर संतों की सेवा करने लगे। सभी को पानी खींचकर स्नान करवाते तथा काँवर लेकर आस-पास के गाँवों में जाकर भिक्षा की आह्लेक लगाते थे। गाँव की गलियों से वे पशु का गोबर उठाते थे। तो संतों के वस्त्र धोकर उनकी प्रसन्नता भी पाते थे। इस तरह उनके सारे दिन सेवा और भक्ति में बीतने लगे। भोजन में वे दिन में एक बार बाजरी के रोटी और मिर्च का गोला ग्रहण करते थे।

एक दिन एक वैरागी आया। साधु उसे सदाव्रत क्षेत्र से अन्न देने लगे । परन्तु वैरागी ने वर्णी की थाली में बाजरे का आधा रोट तथा साथ में मिर्च का गोला देखा, तो उसके मुँह से लार टपकने लगी। उसने सोचा कि कोई अच्छी खासी मिठाई होगी। उसने वर्णी के साथ ही खाने का आग्रह किया। परन्तु जब गोले का बड़ा कौर मुँह में डाला, उसकी जीभ, आँख और नाक बुरी तरह जलने लगे। वह चिल्लाने लगा। उसकी आँखों से पानी गिरने लगा। उसे देखकर नीलकंठ को दया आई और कहा, 'इसे घी पीने को दो।' जब ऐसा किया गया, तभी वैरागी शांत हुआ।

49. चमत्कारों की परंपरा

कुछ दिनों में ही सरजूदास लोज गाँव के लोगों के लाड़ले हो गए। रामानंद स्वामी की आज्ञा से नीलकंठ लोजपुर में मुक्तानंद स्वामी के साथ निवास कर रहे थे। आश्रम की हर तरह की सेवा उन्हें अच्छी लगती थी। गोबर उठाना, झाड़ू लगाना, बर्तन माँजना, कुएँ से पानी खींचकर साधुओं को स्नान कराना तथा कंधों पर काँवर उठाकर भिक्षा माँगना उनको बहुत पसन्द था।

भिक्षा के लिए वे गाँव की गलियों में घूमते तब 'रामकृष्ण धूनी धूनी, रामकृष्ण धूनी धूनी' का मधुर उद्घोष करते रहते थे। यह उनका प्रात:क्रम था।

दोपहर होते ही नीलकंठ ईंधन के लिए गोबर बीनने जाते तब गाँव की अनेक कन्याएँ और स्त्रियाँ भी सिर पर टोकरी लेकर गोबर बीनने निकलतीं। जहाँ भी गोबर पड़ा दिखता, सभी उसी ओर दौड़तीं। नीलकंठ उस समय अपनी योगशक्ति का उपयोग करते। जैसे ही कन्याएँ गोबर उठाने झुकतीं, कि तुरंत डरकर पीछे हट जातीं। क्योंकि उन्हें गोबर में सारे ब्रह्मांड का नज़ारा दिखाई देता था। नदी, नाले, पर्वत, खाई, जंगल, बादल, बिजली आदि देखकर स्त्रियाँ घबराकर वहाँ से चली जातीं और नीलकंठ गोबर उठा लेते। इस तरह वे सबसे अधिक गोबर बीनकर उसमें घास मिलाकर ईंधन के लिए उपले थापते।

लोज गाँव से दो कोस दूर शील गाँव था। शील गाँव में दो हरिभक्त रहते थे। उन्होंने अपनी बाड़ी में खीरा बो रखा था। उन्होंने सोचा कि ये खीरे मुक्तानंद स्वामी को देकर गुरु रामानंद स्वामी के लिए खीरे का अचार बनाने दे दें। यह सोचकर वे मुक्तानंद स्वामी के पास आए।

उन्होंने मुक्तानंद स्वामी से कहा, 'हमारी बाड़ी में बहुत खीरे हुए हैं ।

आप दस-बारह हरिभक्त भेजकर अच्छे अच्छे खीरे मँगवा लीजिए। हमारी इच्छा है कि इन खीरों को सुखाकर रामानंद स्वामी को अचार दें।'

यह सुनकर मुक्तानंद स्वामी ने सुखानंदजी से कहा, 'आप इसी समय शील गाँव जाइए और दस-बारह हरिभक्तों को खीरे लेने के लिए भेज दीजिए।' ये बातें नीलकंठ वर्णी ने सुनी। उन्होंने कहा, 'स्वामी, हरिभक्तों को बुलाने की आवश्यकता नहीं है। आज मैं देवा भक्त को लेकर खीरे ले आऊँगा।'

मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'सरजूदासजी, तुम्हारा शरीर दुर्बल है। दो कोस की दूरी से पंद्रह-बीस मन का बोझ ढोकर लाना दो आदमियों का काम नहीं है। इसलिए दो-पाँच और हरिभक्त साथ में ले जाइए।' परन्तु नीलकंठ कहने लगे, 'यह सेवा तो मैं खुद करूँगा। मुझे कोई परिश्रम नहीं होगा।' इतना कहकर नीलकंठ देवा भक्त को साथ लेकर शील गाँव आ पहुँचे। कुल मिलाकर अठारह मन खीरे की दो गठरी बनाने का आदेश दिया।

एक हरिभक्त ने कहा, 'वर्णीराज, मैं अभी बैलगाड़ी लेकर आता हूँ।'

नीलकंठ ने कहा, 'बैलगाड़ी की कोई आवश्यकता नहीं है। एक बड़ी सी चद्दर ले आओ।'

जब चद्दर लेकर वह आ गया तब सोलह मन खीरे भरकर भक्तों ने एक भारी गठरी बनाई। दूसरी चद्दर में दो मन खीरे बाँध लिए।

अब नीलकंठ ने कहा, 'सभी मिलकर यह बड़ी गठरी मेरे सिर पर रख दो।' तब बारह भक्तों ने मिलकर बड़ी मुश्किल से सोलह मन की गठरी नीलकंठ के सिर पर रखी। सभी को अत्यंत आश्चर्य हुआ कि वह

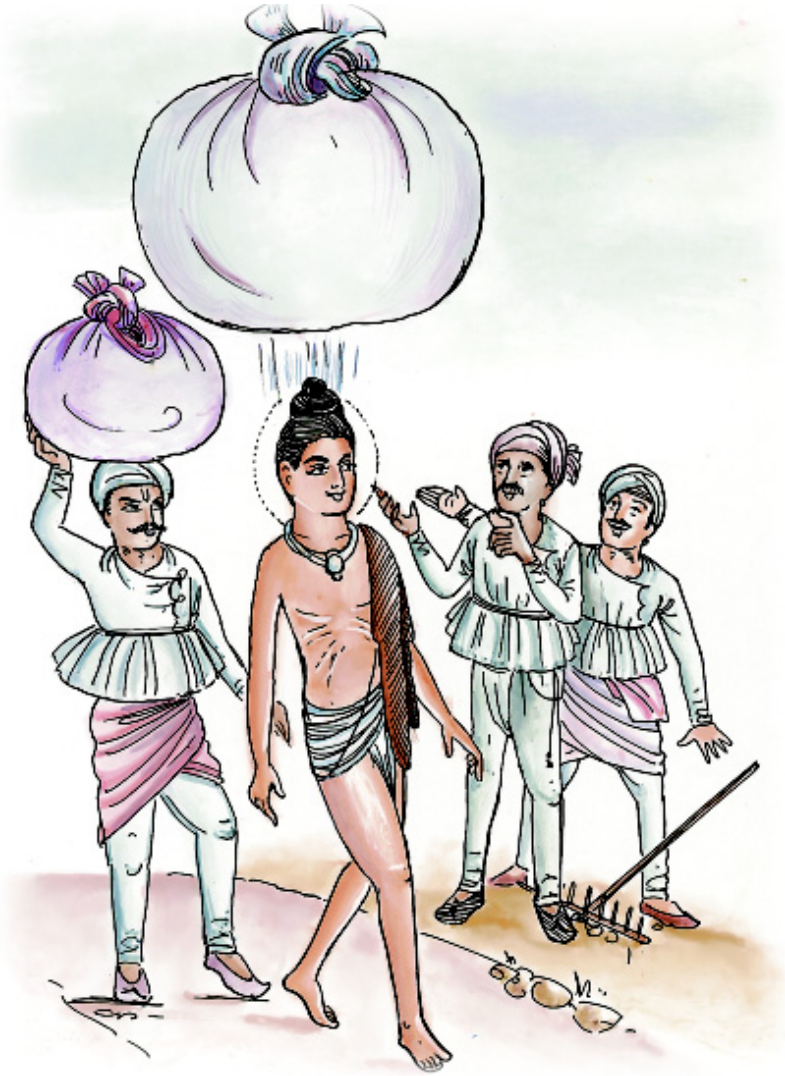

गठरी उनके सिर से एक बित्ता ऊपर झूल रही थी। जब कि छोटी गठरी देवा भक्त ने अपने सिर पर रख ली। फिर दोनों वहाँ से चल दिए।

नीलकंठ तो तेज़ रफ्तार से चले जा रहे थे। देवा भक्त से तो एक कोस का रास्ता भी बड़ी मुश्किल से तय हुआ। थकान और पसीने से वे परेशान होने लगे। उन्होंने नीलकंठ को पुकारा, 'ओ सरजूदास, मुझसे तो यह गठरी अब नहीं उठाई जाती।'

नीलकंठ ने कहा, 'कोई बात नहीं। उसे भी उस बड़ी शिला पर चढ़कर मेरे सिर पर रख दो।'

देवा भक्त ने नीलकंठ की आज्ञा से अपनी गठरी भी नीलकंठ के सिर पर रख दी। बड़ी गठरी के ऊपर छोटी-सी गठरी हवा मे झूल रही थी। यह देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे।

लोज गाँव में आश्रम में आते ही नीलकंठ ने दोनों गठरियाँ सिर से उतारीं और अंदर जाकर कहा, 'खीरे आ गए हैं। साधुओं से कहें कि एक-एक टोकरे भरकर अंदर ले आएँ।'

जब स्वामी मुक्तानंदजी पंद्रह साधुओं को लेकर बाहर आये और दोनों गठरियाँ देखी, तो दंग रह गए। देवा भक्त ने सब कुछ विस्तारपूर्वक सुनाया। मुक्तानंद स्वामी तथा सभी संत नीलकंठ को सिद्धयोगी के रूप में जानकर बड़े आदरभाव से चरणस्पर्श करने लगे। सभी साधुओं ने खीरे कोठार में भर दिए।

50. रामानंद स्वामी को पत्र लिखा

नीलकंठ को रामानंद स्वामी के आश्रम में लगभग सात माह बीत गए थे। फाल्गुन माह के कई दिन बीतने पर भी रामानंद स्वामी नहीं पधारे। नीलकंठ का मन गुरुदर्शन के लिए व्याकुल हो रहा था। उन्होंने मुक्तानंद स्वामी से कहा, 'आप यदि आज्ञा दें, तो गुरुजी का दर्शन करने कच्छ जाऊँ?'

मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'आप धैर्य रखिये, अभी कुछ ही दिनों की तो बात है। वे अवश्य आपको यहीं दर्शन देंगे। आप चाहें तो हम गुरुजी को पत्र लिख सकते हैं।'

नीलकंठ ने तुरंत कलम उठाई और आ.सं. 1856 की कृष्ण पक्ष की

फाल्गुन पंचमी को रामानंद स्वामी के प्रति प्रार्थना-पत्र लिखा। मुक्तानंद स्वामी ने भी अपना पत्र उसके साथ ही गुरुजी के पास भेजा।

मयाराम भट्ट सात दिन के बाद पत्र लेकर भुजनगर पहुँचे। दंडवत् प्रणाम करके भट्टजी ने दोनों पत्र रामानंद स्वामी के हाथों में रख दिये। स्वामी का मन पत्र देखते ही प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने दोनों पत्र सिर पर चढ़ाये। नीलकंठ का पत्र हृदय से लगाकर पहले मुक्तानंद स्वामी का पत्र पढ़ा। उनके चेहरे पर आनंद की सुर्खियाँ फैलने लगीं। परन्तु जब सरजूदास

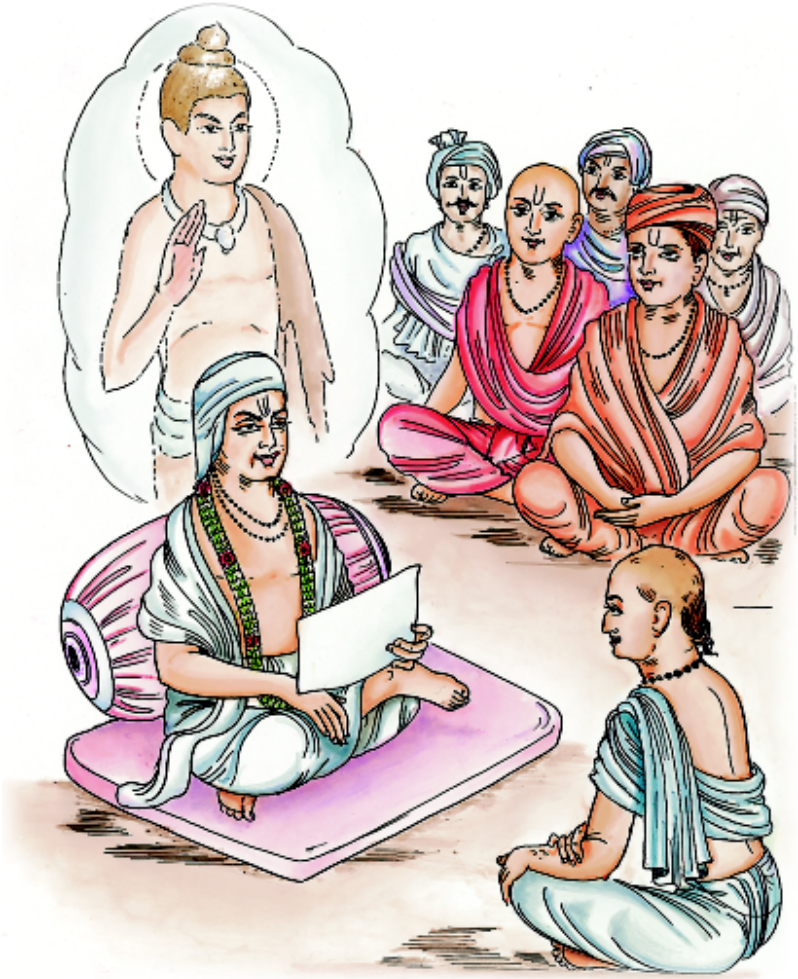

का पत्र पढ़ा तो वे आनंद विभोर हो गए। क्योंकि पत्र के शब्दों में नीलकंठ का दिव्य प्रभाव और उनका ज्ञान, वैराग्य तथा भक्तिभाव झलक रहा था।[8]

रामानंद स्वामी की आँखों से हर्षाश्रु बह रहे थे। वे बोल उठे, 'मैं जिनकी प्रतीक्षा कर रहा था, वे आ गए हैं। नीलकंठ कोई सामान्य विभूति नहीं हैं, वे तो साक्षात् परब्रह्म हैं और सभी को मोक्षदान देने आ गए हैं।'

इतना कहकर फिर बोल उठे, 'धन्य हो ! वर्णीराज! धन्य हो!'

फिर सभाजनों से कहने लगे, 'भक्तों! आज हम सबके जीवन का धन्य क्षण है। आज का दिन मंगलमय है। जिनकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था, जिनके द्वारा भागवत धर्म की स्थापना होनी है, लाखों मुमुक्षु ब्रह्मभाव प्राप्त करके ब्रह्मपुर धाम के अधिकारी होनेवाले हैं, वे वर्णीराज आज लोज में आ चुके हैं।' इतना कहकर उन्होंने एक भक्त से शक्कर का प्रसाद मँगवाया।'

रामानंद स्वामी ने अंजलीभर शक्कर पहले मयाराम भट्ट को दी और कहा, 'भट्टजी! आज आप आनंद के समाचार लाए हैं, इसलिए मैं आपको यह प्रसाद देता हूँ, परन्तु आगे वर्णी आपको जो भी देंगे, आप निहाल हो जायेंगे।' फिर उन्होंने स्वयं सभी को शक्कर का प्रसाद दिया।

दूसरे दिन उन्होंने उत्तर लिखकर भट्टजी को दिया और कहा, 'लोज जाते हुए रास्ते में आप जिस गाँव से गुजरें वहाँ सभी सत्संगियों को समाचार देते रहना कि हर कोई वर्णी के दर्शन के लिए लोज पहुँचे। यह मेरी आज्ञा है।'

भट्टजी लोज की ओर चल दिए। उन्होंने जगह-जगह रामानंद स्वामी का संदेश पहुँचाया।

जब मुक्तानंद स्वामी ने अपना पत्र पढ़ा तो रामानंद स्वामी ने लिखा था कि वर्णी ने आपके पास निवास किया है, तो अच्छे ढंग से उनकी देखभाल करना। वे इहलोक के लौकिक मानव नहीं हैं, इस सत्य की प्रतीति आप सभी को निकट के भविष्य में होगी। उनके द्वारा आश्रम के साधुओं को योगविद्या सिखाना प्रारंभ करना। मैं वैशाख माह उतरते ही आपको मिलूँगा।'

दूसरे पत्र में वर्णी के लिए स्वामी ने लिखा था, 'आप अपने स्वास्थ्य का

---

8. नीलकंठवर्णी द्वारा लिखित यह ऐतिहासिक पत्र आज भी गांधीनगर (गुजरात) स्थित 'अक्षरधाम' स्मारक के 'प्रसादी मंडपम्' में दर्शन के लिए प्रस्तुत किया गया है।

ध्यान अवश्य रखना। क्योंकि इस देह से आपको आनेवाले भविष्य में अनेक कार्य करने हैं। मेरे पास आने की जल्दी मत करना। मैं जल्दी ही आपको मिलनेवाला हूँ। वहाँ हमारे साधुओं को अष्टांगयोग सिखाते रहना। जिस तरह आपको मेरे दर्शन की जल्दी है, वैसे ही मुझे भी आपके दर्शन की उत्कंठा है। फिर भी सत्संग के कार्यार्थ विचरण करना पड़ता है, तथा सत्संगियों को प्रसन्न रखना पड़ता है।' यह पत्र पढ़कर नीलकंठ बहुत प्रसन्न हुए।

51. नीलकंठ की महिमा

शेखपाट नामक गाँव में रामानंद स्वामी के भक्त लालजी सुथार (बढ़ई) रहते थे। लालजी सुथार ने सुना कि गुरु रामानंदजी ने सभी को वर्णी के दर्शन के लिए लोज भेजा है, उनका मन नहीं माना। अतः वे रामानंद स्वामी के पास भूज पहुँच गए।

स्वामीजी, लालजी को देखकर आश्चर्य में पड़ गए तो लालजी कहने लगे कि 'मयाराम भट्ट ने मुझे कहा था कि लोज में वर्णी का दर्शन करने के लिए स्वयं आपने आदेश दिया है। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि वे बहुत समर्थ विभूति है? क्या वे आपसे भी अधिक समर्थ हैं? मैंने सोचा कि कदाचित् मयाराम आपके नाम पर वर्णी की झूठी महिमा गा रहे हों।'

यह सुनकर रामानंद स्वामी फौरन बोल उठे, 'आपको मेरे पास आने की आवश्यकता ही क्या थी? जब कि मैंने आदेश दिया था कि आप सब लोज में जाकर वर्णी के दर्शन करना, तो आप लोज क्यों नहीं गए?' लालजी तो रामानंद स्वामी के ऐसे तेवर देखकर स्तब्ध रह गए। उन्होंने प्रणाम करके पूछा, 'क्या नीलकंठ दत्तात्रेय, ऋषभदेव और रामचन्द्र की तरह ही महान हैं?'

रामानंद स्वामी ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'वे तो उनसे भी महान हैं। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण आदि अवतारों से भी अत्यंत महान अवतारी पुरुष हैं। वे तो अवतारों के भी अवतारी हैं। इनकी महिमा जितनी गाते रहें, उतनी ही कम है। बड़े-बड़े योगी और मुनि भी उनका ध्यान लगाते हैं। इतने महान वर्णीराज के दर्शन छोड़कर आप कच्छ क्यों आए? जाइए लोजपुर, और नीलकंठ वर्णी के दर्शन करके प्रणाम करना।'

लालजी यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने गुरु को प्रणाम

करके लोजपुर का रास्ता पकड़ लिया। वे नीलकंठ के दर्शन करके धन्य हो गए। वे रामानंद स्वामी के अंतर्धान होने के बाद भागवती दीक्षा ग्रहण करके स्वामी निष्कुलानंदजी बन गए।

52. रामानंद स्वामी के साथ मिलन

लोजपुर में नीलकंठ को नौ माह बीत गए, परन्तु रामानंद स्वामी से उनका मिलन नहीं हो पाया।

मुक्तानंद स्वामी नीलकंठ को बार-बार धीरज बँधाते रहते थे। अचानक नीलकंठ ने एकबार मुक्तानंद स्वामी से कहा, 'स्वामी ! कल आप पूजा में बैठेंगे तब आपके साथ मैं भी बैठूँगा।' मुक्तानंद स्वामी को यह बात समझ में नहीं आई।

दूसरे दिन स्वामी पूजा के लिए बिराजमान हुए। तब नीलकंठ उनके पास आकर बैठ गए। मुक्तानंद स्वामी ध्यान में रामानंद स्वामी के दर्शन कर रहे थे। सरजूदास ने उसी पल योगशक्ति से अपनी वृत्ति मुक्तानंद स्वामी की वृत्ति से जोड़ दी। ध्यान में वे रामानंद स्वामी की मनोहर मूर्ति, गौर और पुष्ट शरीर, कमलदल समान आँखें तथा श्वेत वस्त्रों में सुशोभित स्वरूप देख रहे थे, उसी प्रकार नीलकंठ ने भी मुक्तानंद स्वामी के मन में योगशक्ति द्वारा प्रवेश करके गुरुदर्शन पा लिया।

मुक्तानंद स्वामी ध्यान से जाग्रत हुए, तब नीलकंठ ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'मैंने भी रामानंद स्वामी के दर्शन कर लिए।' फिर उन्होंने रामानंद स्वामी की मूर्ति का यथार्थ वर्णन किया, सभी आश्चर्यमुग्ध हो गए।

ज्येष्ठ की कृष्णा दशमी के सायंकाल पीपलाणा से कुरजी दवे संदेश लेकर आए कि रामानंद स्वामी ने नीलकंठ वर्णी तथा सभी संतों को पीपलाणा बुलाया है।

यह सुनते ही मुक्तानंद स्वामी ने प्रसन्न होकर अपने सिर पर बाँधने का रूमाल उन्हें दिया। अन्य संतों ने भी कुछ न कुछ प्रासादिक चीज़ें भेंट के रूप में दी। परन्तु नीलकंठ के पास देने के लिए कुछ नहीं था। उन्होंने कहा, 'दवेजी! मैं तुम्हें अपना अक्षरधाम देता हूँ।'

कुरजी यह बात समझ नहीं पाये। अतः नीलकंठ ने पुनः कहा, 'जो

कोई भी नहीं दे सकता, ऐसा मेरा परात्पर अक्षरधाम, मैं तुम्हें भेंट में दूँगा।'

नीलकंठ वर्णी संतों के साथ पीपलाणा के लिए निकले। उस समय आकाश से बूंदा-बांदी हो रही थी। परन्तु संतों-भक्तों के छोटे-बड़े वृंद भजन करते हुए शीघ्रतापूर्वक चले जा रहे थे। कृशकाय नीलकंठ थकान के कारण रुक जाते थे। मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'नीलकंठ, ऐसा करेंगे तो हम कब पीपलाणा पहुँच पायेंगे? आप योगशक्ति धारण कीजिए। ताकि हम उचित समय पर पहुँच सके।'

नीलकंठ ने तुरंत योगशक्ति धारण कर ली और सबसे तेज़ चलने लगे। जिस तरह धनुष में से तीर छूटता है उसी गति से नीलकंठ इतना तेज चल रहे थे कि संघ पीछे छूट गया। वे ओझत नदी के तट पर पहुँचे। पीपलाणा गाँव नदी के उस पार था। दोनों तटों के बीच नदी पानी से लबालब भरी हुई थी। नदी में इतनी तेज़ बाढ़ दिखाई दे रही थी कि अच्छे-अच्छे हाथी भी बह जाएँ!

परन्तु नीलकंठ ने रुकने का नाम नहीं लिया। गुरुदर्शन की तीव्र उत्कंठा से वे नदी के जल पर योगशक्ति से चलने लगे। शीघ्र ही वे सामने किनारे पर पहुँचे और स्नान-ध्यान करके तैयार हो गए। घंटेभर के बाद जब नदी शांत हुई, नाव में बैठकर सभी पीपलाणा आ पहुँचे।

रामानंद स्वामी यहाँ हरिभक्त नरसिंह मेहता के घर रुके थे।

आ. सं. 1856 की ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष द्वादशी का वह मांगलिक दिन था। रामानंद स्वामी को किसी ने समाचार दिया कि नीलकंठ वर्णी और संतवृंद गाँव में आ पहुँचे हैं। यह सुनकर रामानंद स्वामी व्यासपीठ से तुरंत उठकर खड़े हो गए। संघ में सबसे आगे नीलकंठ थे। रामानंद स्वामी को देखते ही उन्होंने दूर से दंडवत् प्रणाम किया। रामानंद स्वामी जल्दी से दौड़कर आगे बढ़े और वर्णी को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया।

गुरु-शिष्य के इस असाधारण और ऐतिहासिक मिलन को देखकर सभी संत-भक्त विस्मित और स्तब्ध थे! उसी समय पास में खड़े हुए मुक्तानंद स्वामी को संबोधित करके रामानंद स्वामी ने कहा, 'स्वामी! जिस दिव्य विभूति की प्रतीक्षा में मैंने जीवन का प्रत्येक क्षण तप-व्रत, वैराग्य और प्रभु-सेवा में अर्पित किया तथा जिसकी प्रतीक्षा में लोगों को असीमित धैर्य

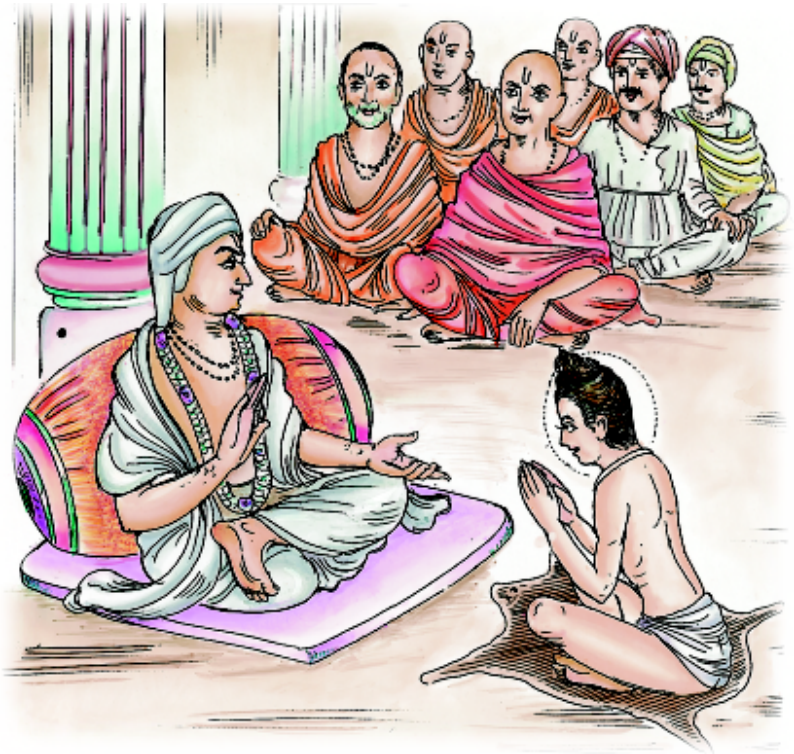

बंधाता रहा, ये वही वर्णी-वेशधारी साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण हैं।' इतना कहकर रामानंद स्वामी नीलकंठ की महिमा सुनाने लगे।

एक साधु ने एकाएक रामानंद स्वामी से पूछा, 'स्वामी ! आप बार-बार कहते थे कि मैं तो डुगडुगी बजाता हूँ। नाच नचानेवाले नटवर तो अब आएँगे, तो वह क्या यही वर्णी हैं?' 'हाँ ! ये वे ही हैं।' रामानंद स्वामी बोले, 'आपके सद्भाग्य हैं कि आपको इनके दर्शन हुए हैं। जब उनका यथार्थ परिचय होगा, तो आपके आनंद की सीमा ही नहीं रहेगी।'

53. जमादार को समाधि लग गई

रामानंद स्वामी व्यासपीठ पर बिराजमान होकर नीलकंठ की महिमा सुना रहे थे। भूमि पर बिछाये गए आसन पर नीलकंठ नम्रतापूर्वक बैठे थे। उस समय सभा में एक मुस्लिम जमादार आ पहुँचा। वह रामानंद स्वामी के

चरण स्पर्श करके कथा-श्रवण करने लगा।

धीरे से नीलकंठ ने उसकी ओर ज्योंही अपनी कृपादृष्टि की कि उसी पल उसे समाधि लग गई। समाधि में उसने अक्षरधाम का दर्शन किया। जहाँ सुंदर दिव्य सिंहासन पर नीलकंठ वर्णी विराजमान थे। उनके चारों तरफ अनंत भक्तजन प्रणाम करके नीलकंठ की स्तुति कर रहे थे। जमादार ने देखा कि सभी भक्तों के साथ रामानंद स्वामी भी नीलकंठ की स्तुति कर रहे थे!

जब वह समाधि अवस्था से जाग्रत हुआ, उसने खड़े होकर कहा, 'यह क्या? यह हिन्दुओं की कैसी उल्टी रीति है? मुझे तो बिलकुल ही समझ में नहीं आ रहा। यह कैसी रीति है, कि मुरशिद (संत) सिंहासन पर बैठें और अल्लाह (भगवान) भूमि पर बैठें?'

रामानंद स्वामी ने स्मित करते हुए कहा, 'जमादार साहब! यह आप नहीं समझोगे। हम हिन्दुओं की असली रीति यही है! वसिष्ठ ऋषि ऊँचे

आसन पर बिराजमान होते थे, जब कि भगवान श्रीराम उनके समक्ष भूमि पर बिराजमान होते थे।' नीलकंठ यह सुनकर मंद-मंद स्मित करने लगे। जमादार बिना कुछ समझे नीलकंठ के चरणस्पर्श करके आश्चर्यमुग्ध अवस्था में सिर खुजलाता हुआ चला गया।

54. भागवती दीक्षा

अब नीलकंठ, रामानंद स्वामी के साथ विचरण में जुड़ गए। चातुर्मास में उन्होंने कठिन व्रत किया। दीपावली के उत्सव पर अन्नकूट की सेवा की। आ.सं. 1857 की प्रबोधिनी, कार्तिक शुक्ला एकादशी (देवउठी एकादशी) के दिन सभी ने निर्जल उपवास किया था।

स्नान-ध्यान करके नीलकंठ ने रामानंद स्वामी का चरण-स्पर्श किया। और कहा, 'स्वामी! आप मेरे माता-पिता हैं। आप ही मेरे गुरुजी हैं। आज मुझे महादीक्षा दीजिए।'

रामानंद स्वामी ने बड़ी धूम-धाम से आज का उत्सव मनाना प्रारंभ किया। ढोल बाजे और शहनाईयाँ गूंजने लगीं। विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा शास्त्रोक्त विधान के अनुसार यज्ञ-विधि प्रारंभ हो गई।

जटा का त्याग करके नीलकंठ ने मुंडन करवाया और श्वेत वस्त्र धारण करके यज्ञशाला में पधारे। रामानंद स्वामी ने नीलकंठ के गले में तुलसी की दुहरी कंठी धारण करवाई। भाल पर चंदन का ऊर्ध्वपुंड्र तिलक किया। दोनों भुजा तथा छाती पर चंदन की अर्चा की तथा कान में गुप्त गुरुमंत्र देकर 'सहजानंद स्वामी' तथा 'नारायण मुनि' इस तरह उनके दो नाम घोषित किये। भागवती दीक्षा के बाद रामानंद स्वामी ने प्रेरणा वचन देते हुए कहा, 'हे सहजानंद स्वामी, धर्म का पालन करना और सभी को धर्म के अनुशासन में रखना। इस धरती के अगणित जीवों का कल्याण करना। तथा भक्तिमार्ग का प्रवर्तन करना।'

स्वामी सहजानंदजी ने गुरु-आज्ञा को स्वीकार किया। उस समय रामानंद स्वामी का हृदय प्रसन्नता से गद्‌गद हो रहा था। सभी संत तथा हरिजन नवदीक्षित विभूति स्वामी सहजानंदजी की दिव्यता में मानो लीन हो गए!

55. धर्मधुरा धारण

सहजानंद स्वामी अब रामानंद स्वामी के साथ रहकर सोरठ (जिला जूनागढ़) के गाँव-गाँव विचरण करने लगे। जहाँ-जहाँ वे जाते, वहाँ रामानंद स्वामी हरिभक्तों को उनकी अपरंपार महिमा कहते थे। हरिभक्तों को भी उनके दर्शन से उनकी भगवत् प्रतिभा की प्रतीति होने लगती थी।

दीक्षा के बाद भी वे भोजन में प्रतिदिन रोटी और मिर्च के सिवा कुछ नहीं लेते थे। उनके अत्यंत दुर्बल शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए रामानंद स्वामी उनके शरीर पर मोम का तेल लगवाते थे। व्रत-उपवास करने की मनाही थी। जब गुरु-शिष्य भोजन करने के लिए साथ-साथ बैठते, रामानंद स्वामी उन्हें आग्रहपूर्वक पौष्टिक अन्न और मिठाई खिलाते थे। शरीर की पुष्टि के लिए वे उनको भोजन में मक्खन-मिसरी भी देते तथा संध्या के समय दूध-शक्कर भी दिया करते।

इस प्रकार एक साल का समय बीत गया। एक दिन रामानंद स्वामी ने

स्वामी रामदासजी, स्वामी मुक्तानंदजी तथा अन्य साधुओं एवं भीमभाई, पर्वतभाई, मयाराम भट्ट आदि हरिभक्तों की एक बैठक बुलाई। फिर उन्होंने पूछा, 'मैं किसी योग्य पात्र को इस सत्संग की धुरा सौंपना चाहता हूँ तो आप सभी के मत से इस संप्रदाय की धर्मधूरा किसे सौंपनी चाहिए?'

सभी संतों तथा हरिभक्तों ने एक स्वर में कहा, 'स्वामी, यह बाल ब्रह्मचारी सहजानंद स्वामी ही धर्मधुरा के योग्य हैं!'

रामानंद स्वामी ने प्रसन्न होकर कहा, 'आप सभी ने मेरे मन की ही बात कह दी। अब हमें सहजानंदजी के पट्टाभिषेक की तैयारी करनी चाहिए।'

रामानंद स्वामी ने पवित्र ब्राह्मणों को बुलाकर कार्तिक शुक्ला एकादशी (प्रबोधिनी एकादशी) का मुहूर्त निश्चित किया, तथा उत्सव की निमंत्रण पत्रिका लिखवाकर सेवकों को गाँव-गाँव भेज दिया कि पत्रिका मिलते ही आप सब सहकुटुंब उत्सव में सहभागी हो।

मयाराम भट्ट ने यज्ञ के पुरोहितों की व्यवस्था संभाली। पर्वतभाई साज सज्जा की व्यवस्था करने लगे। भीमभाई को गद्दे तथा चादरों की व्यवस्था सौंपी गई थी। गोवर्धनभाई ने घी, तेल, अनाज आदि सीधा-सामान का प्रबंध अपने हाथों में रखा। हीरजीभाई ने हिसाब और हरिभक्तों की देखभाल की सेवा संभाली। इस तरह सेवा के प्रत्येक कार्य अच्छी तरह चलने लगे।

जेतपुर शहर में हजारों हरिभक्तों के लिए शामियाना तैयार किया गया। यज्ञशाला, पाकशाला, घुड़शाल आदि का प्रबंध समुचित ढंग से हुआ था। द्वार पर कदली के स्तंभ गाड़कर मंडप की शोभा की गई थी। ध्वजा-पताका और वंदनवार से सारा मंडप और जेतपुर शहर सुशोभित हो गया।

आ. संवत् 1858 की कार्तिक शुक्ला एकादशी के दिन (दि. 16-11-1801) जेतपुर शहर की गलियों और मार्गों पर हज़ारों हरिभक्त उमड़ पड़े। प्रात:काल से भजन-कीर्तन के साथ शहनाई के सूर गूँजने लगे। रामानंद स्वामी के साथ सहजानंद स्वामी, मुक्तानंद स्वामी, सुखानंद स्वामी आदि भादर नदी पर स्नान करने पधारे। वापस लौटकर सहजानंद स्वामी ने पूजा-पाठ करके गुरु के चरणों में साष्टांग दंडवत् प्रणाम किये और गुरुपूजन किया।

फिर शोभायात्रा के रूप में सभी मंडप में जाने के लिए चल दिये। बाजे-गाजे के साथ सिपाही बंदूकें चला रहे थे। संत कीर्तन गा रहे थे। रामानंद स्वामी और सहजानंद स्वामी, दो घोड़ों की बगी में बिराजमान थे।

वैदिक ब्राह्मणों के मंत्रोच्चारण से मंडप गूँज रहा था। मंडप के मध्य में यज्ञकुंड की दक्षिण दिशा में सुंदर आसन बिछा रखा था। धूप, दीप और चंदन की सुगंध से सारा वातावरण सुरभित और प्रफुल्लित हो गया था। यज्ञ में राधाकृष्ण की मूर्तियाँ बिराजमान थीं। रामानंद स्वामी और सहजानंद स्वामी ने प्रतिमाओं को प्रणाम किया। यज्ञ में वैदिक विधिवत् आहुतियाँ प्रदान की।

यज्ञनारायण के साक्ष्य में रामानंद स्वामी ने सहजानंद स्वामी का हाथ पकड़कर व्यासपीठ पर बिराजमान किया। सहजानंद स्वामी के ललाट पर चंदन की अर्चा की, कुंकुम का तिलक किया तथा कंठ में पुष्पमाला अर्पण

करते ही सारा वातावरण, 'बोलो श्री सहजानंद स्वामी महाराज की जय' के जयनाद से गूँज उठा।

आकाश से देवों ने पुष्पवर्षा की। स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं। भक्तों ने जय-जयकार का नारा लगाया। संतों और हरिभक्तों ने क्रमशः सहजानंद स्वामी का पूजन किया। फिर एकबार सहजानंद स्वामी ने गुरु को साष्टांग प्रणाम करके गुरु-पूजन किया और सभी संतों के चरणस्पर्श किये। लोकाचार के अनुसार गुरु रामानंद स्वामी ने अपने प्रिय शिष्य को इस प्रकार उपदेश दिया : 'आज मैंने आपको धर्म की धुरा सुपुर्द की है। अतः आप धर्म का पालन एवं पोषण करना।

जिस धर्म का वेदों में जिक्र किया गया है, उस धर्म का आचरण करके लोगों को भी उसीके अनुशासन में रखना। भक्तिमार्ग की पुष्टि के लिए यज्ञ और विष्णुयाग अवश्य करवाना। लोककल्याण के कार्यों के साथ ज्ञान, वैराग्यादि सद्‌गुणों का प्रवर्तन करना। वैराग्यवान मुमुक्षु को भागवती दीक्षा देकर त्यागी बनाना। धर्म सहित भक्ति का प्रवर्तन करना। सद्‌ग्रंथ की रचना करके संप्रदाय स्थापित करना। जो कुछ वस्त्र, आभूषण, फल, फूल आदि हरिभक्त आपको प्रेमपूर्वक अर्पण करें उसे अंगीकार करना। कुपात्र लोगों को संप्रदाय से दूर करना।'

तत्पश्चात् उन्होंने सहजानंद स्वामी को सुंदर पघड़ी तथा सुंदर जरियान वस्त्र के साथ स्वर्ण, मोती तथा हीरों के हार धारण करवाए। अंगूठी, कड़े, कुंडल आदि आभूषण भी अर्पण किये। धूप, दीप करके गुरु रामानंद स्वामी ने सहजानंद स्वामी की आरती उतारी। सभी सभाजन दिव्य आनंद में निमग्न हो गए।

फिर रामानंद स्वामी ने सभी संतों तथा हरिभक्तों को सहजानंद स्वामी की आज्ञा में रहकर भगवान का भजन करने के लिए आदेश दिया। साथ-साथ यह भी कहा कि 'मैं तो गणेश की तरह पहले आया हूँ। लेकिन सभी के स्वामी तो सहजानंदजी हैं। वे तो सबसे परे जो अक्षर हैं, उस अक्षर से भी परे पुरुषोत्तम नारायण हैं। इसलिए सभी उनकी आज्ञा का पालन करना और आनंदपूर्वक उनका भजन करना।'

फिर रामानंद स्वामी ने सहजानंद स्वामी से वरदान माँगने को कहा।

सहजानंद स्वामी ने दो वरदान माँगे, 'आपके सत्संगी को एक बिच्छू काटने का दु:ख होना हो, तो उसके बदले मेरे एक-एक रोम में कोटि-कोटि बिच्छुओं का दु:ख मुझे हो; परन्तु आपके सत्संगी को तनिक भी दु:ख न हो। और आपके सत्संगी के प्रारब्ध में रामपात्र (भिक्षापात्र) लिखा हो तो वह मुझे मिले परन्तु आपके सत्संगी अन्नवस्त्र के लिए कभी दु:खी न हो - ये दो वरदान दीजिए।' आध्यात्मिक जगत में यह प्रार्थना करुणा का अद्वितीय सीमा-चिह्न है। जिसमें इष्टदेव स्वयं अपने शिष्यों के दु:खों से द्रवित होकर उन्हें सुखी करने की इच्छा रखते हैं।

सहजानंद स्वामी की ऐसी उदार भावना देखकर रामानंद स्वामी की आँखें हर्ष के आँसूओं से छलक उठीं। सहजानंद स्वामी ने अपने भक्तों के कारण अपना सर्वस्व न्यौछावर करने का वरदान माँगा था। गुरु रामानंद स्वामी ने 'तथास्तु' कहकर पूरे सत्संग को कृतार्थ किया।

इस अवसर पर सहजानंद स्वामी के प्रिय भक्त अक्षरब्रह्म श्री मूलजी शर्मा भी अपने स्नेही लालजी सुथार के साथ उपस्थित थे। मूलजी शर्मा ने सहजानंद स्वामी की पूजा करके एक गाय अर्पण की। सहजानंद स्वामी ने उस समय उनका परिचय देते हुए कहा था, 'ये मूलजी ही हमारे अक्षरधाम हैं।'

अनेक भक्तों ने सहजानंद स्वामी के चरणों में भाँति-भाँति के भेंट अर्पण किये। पूरे शहर में बड़े उत्साह के साथ सहजानंद स्वामी की भव्य शोभायात्रा निकाली गई। आज से वे धर्म-ध्वज वाहक बने थे।

56. रामानंद स्वामी का अक्षरवास

लगभग एक माह पूरा होने को था। रामानंद स्वामी ने सोचा कि 'प्रकट पुरुषोत्तम धर्म की धुरा धारण कर चुके हैं, अब मेरा कार्य पूर्ण हुआ है। अब मुझे विदा लेनी चाहिए।' यह सोचकर वे फणेणी गाँव गए। जहाँ उन्होंने गंभीर बीमारी ग्रहण की।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने हरिभक्तों को बुलाकर कहा, 'मेरा कार्य समाप्त हो चुका है। अब जो कुछ है, स्वामी सहजानंदजी ही है। उनकी आज्ञा का पालन करना। मैंने तो डुगडुगी बजाकर आप सबको इन पुरुषोत्तम

नारायण के चरणों में सौंप दिया है। अब वे ही भागवत धर्म की स्थापना और एकांतिक धर्म का प्रसारण करेंगे। आत्यंतिक कल्याण का मार्ग उन्हीं के द्वारा प्रशस्त होगा।'

इतना कहकर रामानंद स्वामी आसन पर ध्यानमग्न हुए और कुछ ही पलों में अपनी योगशक्ति से देहत्याग कर दिया। चारों ओर प्रकाश पसरने लगा। संवत् 1858 की मागशर शुक्ला त्रयोदशी के दिन रामानंद स्वामी अंतर्धान हुए।

सहजानंद स्वामी ने सभी को धैर्य देते हुए कहा, 'महापुरुष पृथ्वी पर से कभी नहीं जाते। यदि आप स्वामी की आज्ञा के अनुसार आचरण करेंगे, तो स्वामी अंतर्धान हुए हैं, ऐसा भाव कभी नहीं होगा और परमेश्वर का प्रकट स्वरूप आप सब की समझ में आ जाएगा।'

आज से सहजानंद स्वामी के जीवन का अनन्य अध्याय प्रारंभ हुआ। जो इस धरातल पर अध्यात्म विषय में नया प्रकाश देने के लिए शुरु हुआ था।

❧